॥ श्रीः ॥

* विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला *

१८

ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य

लेखकः—

बी. एम. चिन्तामणि

प्रवक्ताः—

हरिश्चन्द्र कालेज, वाराणसी

प्रस्तावना लेखकः—

आचार्य पद्मभूषण डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

The Chowkhamba Vidya Bhawan

Post Box 69, Varanasi-1

(INDIA)

1959.

मूल्य : तीन रुपया

प्रथम संस्करण : फरवरी १९५९

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

पूज्य पिता पंडित वी. एम. मइलारय्या

को

सादर समर्पित

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की विवेचना की गई है। ऐतिहासिक उपन्यास क्या है? साधारणतः ऐसे उपन्यास जिसमें अतीतकालीन पात्र, वातावरण और घटनाओं के ज्ञात तथ्यों को कल्पना से मांसल और जीवन्त बनाकर रखने का प्रयास होता है, 'ऐतिहासिक उपन्यास' कहे जाते हैं। विशुद्ध वैज्ञानिक अर्थ में इतिहास अविसंवादी प्रामाणिक तथ्यावली का धारावाहिक संग्रह है। प्रामाणिक ग्रंथों, शिलालेखों, ताम्रपट्टों, मुद्राओं और प्राचीन पत्रादि के आधार पर प्रामाणिक तथ्य ग्रहण किये जाते हैं परन्तु ये सब मिलाकर भी इतिहास नहीं बनते। उसे धारावाहिक बनाने के लिये इतिहास-लेखक को अनुमान का सहारा लेना ही पड़ता है। 'तथ्य' सदा 'सत्य' नहीं होता। मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय से निकलने पर ही वह सत्य का रूप धारण कर सकता है। इतिहास-लेखक कम से कम अनुमान का सहारा लेना चाहता है पर ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक तथ्य को साधन बनाकर उसे रसमय बनाने के लिये कल्पना का यथेष्ट आश्रय लेता है।

इतिहास का सारा अतीत समान भाव से अज्ञात या ज्ञात नहीं होता। साधारणतः सुदूर अतीत के बारे में तथ्यों की जानकारी कम होती है और निकट अतीत के संबन्ध में अपेक्षाकृत अधिक। ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक अल्पज्ञात तथ्य वाले सुदूर काल की घटनाओं का सूत्र मिलाने के लिये कल्पना का अधिक आश्रय लेता है और निकट अतीत का कम। उपन्यास का लेखक

वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह अतीत का चित्रण करते समय भी पुरातत्त्व, मानव-तत्त्व और मनोविज्ञान आदि की आधुनिकतम प्रगति से अनभिज्ञ रहकर थोथी कल्पना का आश्रय ले उपहासास्पद बन जाता है। इसीलिये ऐतिहासिक उपन्यास का लिखना कठिन कार्य है। लेखक को आधुनिकतम प्रगति का पूरा ज्ञान होना चाहिए। जो लेखक विभिन्न क्षेत्रों में किए हुए अनुसंधानों की आधुनिकतम प्रगति की उपेक्षा करके ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की चेष्टा करता है वह सजीव पात्रों की रचना करके भी सहृदय पाठकों से रस-बोध की आशा नहीं रख सकता। छोटी-छोटी बातों में भी उसे सावधान रहना पड़ता है। सामान्य संबोधन, शिष्टाचार के लिये प्रयुक्त शब्द और तत्कालीन अंधविश्वासों के विरुद्ध जाने वाले वाक्यांश भी रस-बोध में बाधक हो जाते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास के आलोचक को भी बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है। जिस काल का उपन्यास लिखा जा रहा है उसकी रीति-नीति, आचार-व्यवहार, वस्त्र-आभूषण, राह-घाट, साज-सज्जा सबके प्रति उसकी दृष्टि सजग होनी चाहिए। इन सारे ंधनों के भीतर उपन्यास-लेखक ने जो जीवन्त सृष्टि करनी चाही है उसका साहित्यिक मूल्यांकन भी कठिन कार्य है। कभी-कभी आलोचक की अल्पज्ञता आलोच्य की महिमा को खर्व और खंडित कर देती है, इसलिये ऐतिहासिक उपन्यास का विवेचन कठिन कार्य माना जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों का विवेचन है। इसके लेखक श्री चिंतामणि जी ने इसी कठिन कार्य को सफलतापूर्वक निबाहा है। उन्होंने हिंदी में लिखे गए ऐतिहासिक उपन्यासों के परिवेश को समझने का प्रयत्न किया है, पात्रों और घटनाओं के औचित्य का विचार किया है और उपन्यासों के साहित्यिक मूल्य को आंकने का प्रयत्न किया है। मुझे पुस्तक पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह विषय अभी और विस्तार की अपेक्षा रखता है, क्योंकि जैसा ऊपर

कहा गया है ऐतिहासिक परिवेश के अध्ययन में छोटी-छोटी बातों के भी सूक्ष्म विश्लेषण की आवश्यकता होती है। एक ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक ने बौद्धकालीन उपन्यास लिखते समय सेनापति को भन्ते कहकर संबोधित किया है। इस छोटे से शब्द ने रस-बोध में बड़ी बाधा उत्पन्न की है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास के विवेचन में छोटी सी गलती भी हलुए के कंकड़ की भाँति सारा मजा किरकिरा कर देती है। प्रत्येक उपन्यास के ऐसे दोषों के विवेचन में और गुणों के परिशंसन में स्वभावतः ही विस्तार की अपेक्षा रह जाती है जो इस छोटी सी पुस्तक में अँट नहीं सका है। श्री चिंतामणि जी की दृष्टि सूक्ष्म है और विवेचन-पद्धति प्रौढ़ तथा परिमार्जित। इसलिये थोड़े विवेचन में भी वे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँच सके हैं। यही इस पुस्तक की विशेषता है। मेरा विश्वास है कि वे इस क्षेत्र में और भी अधिक कार्य करने की क्षमता रखते हैं और निश्चय ही वे और भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों से साहित्य को समृद्ध करेंगे।

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दी श्री चिंतामणि की मातृभाषा नहीं है परन्तु इस भाषा पर उनका अधिकार मातृ-भाषा जैसा ही है। वे हिंदी के सुयोग्य अध्यापक तो हैं ही, संतुलित विचार के लेखक भी हैं। हिंदी में आलोचकों के अलग-अलग वर्ग होते जा रहे हैं, उनमें दलगत और विचारगत आग्रह भी बढ़ता जा रहा है। जो लेखक हिंदी-भाषी नहीं हैं वे इन आग्रहों से मुक्त हैं। वे साहित्यिक रचनाओं को अधिक निष्पक्ष होकर देख सकते हैं। आलोचना करते समय कभी-कभी उनकी भाषा कड़ी हो गई है, परन्तु उसका कारण कोई कटुता नहीं जान पड़ती। आलोचक को कभी-कभी बाध्य होकर कड़ी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। उससे आलोच्य का गौरव म्लान नहीं होता और यदि हृदय में कटुता न हो तो आलोचना भी दूषित नहीं होती। फिर भी मेरे विचार से भाषा का यथासंभव मृदु होना वाञ्छनीय है। परन्तु ईमानदारी ही बड़ी बात है। चिन्तामणि जी की आलोचना में वह है। जैसे-जैसे हिन्दी का प्रचार और

प्रसार बढ़ता जायगा वैसे-वैसे हिंदी-भाषी क्षेत्र के बाहर ऐसे साहित्यालोचक बढ़ते जाएँगे, जो किसी प्रकार के आग्रह में आबद्ध नहीं होंगे; और हिंदी-साहित्य को बृहत्तर पट-भूमिका पर रखकर देखने में समर्थ होंगे। प्रस्तुत पुस्तक से यह आशा साकार हुई है।

मेरी हार्दिक शुभ-कामना है कि श्री चिंतामणि जी स्वस्थ और दीर्घायु रहकर उत्तमोत्तम ग्रंथों से हिंदी-साहित्य को समृद्ध करते रहें।

बिल्ववाटिका
वसन्तपंचमी
२०१५

—हजारी प्रसाद द्विवेदी

अपनी बात

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का यह विवेचन पाठकों के सामने है। हिन्दी में उपन्यास-साहित्य का आरंभ तो उन्नीसवीं सदी से ही हो गया था, पर सच्चे अर्थों में उपन्यास बीसवीं सदी के आरंभ से लिखे जाने लगे हैं। इन उपन्यासों की प्रकृतिगत विविधता भी निरन्तर बढ़ती गई है। ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए हैं और उनकी संख्या पर्याप्त हो चुकी है। मैं जब हिंदी एम० ए० की परीक्षा दे रहा था तो उस परीक्षा के लिये एक निबन्ध लिखने की अनुमति मुझे प्राप्त हुई और यह विषय चुना गया। बाद में उसमें कुछ घटा-बढ़ा कर उस निबन्ध को अब पुस्तक का रूप दिया जा रहा है। जिस समय मैंने ऐतिहासिक उपन्यासों के संबन्ध में निबन्ध लिखना शुरू किया उस समय इस संबन्ध में कोई उल्लेख योग्य कार्य नहीं हुआ था। छिट-फुट लेख और इतिहास-ग्रन्थों में प्रासंगिक चर्चाएँ अवश्य मिलती थीं। ऐतिहासिक उपन्यासों के संबन्ध में इधर दो-एक पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं परन्तु उस समय सामग्री कम थी। वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यासों की आलोचना कठिन काम है। केवल साहित्यिक अर्थों की जानकारी ही इसके लिये पर्याप्त नहीं है, ऐतिहासिक ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है। पुस्तक समाप्त करने के बाद मैं यह अनुभव करता हूँ कि इस विषय का अधिक विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

मुझ से जैसा-कुछ बन पड़ा है, पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि ऐतिहासिक उपन्यासों की विवेचना कठिन कार्य है। इतिहास-सम्मत जीवन की पृष्ठ-भूमि का निश्चित करना जितना कठिन कार्य है उससे कहीं अधिक कठिन है उस निश्चित पृष्ठ-भूमि का ठीक-ठीक परीक्षण। सावधान व्यक्ति से भी प्रायः भूलें हो जाया करती हैं।—जितना कठिन काम इसका लिखना है उससे कहीं अधिक कठिनाई और

भूल की गुंजाइश इसकी विवेचना में है; फिर भी मैंने भरसक प्रयत्न किया है। हो सकता है कुछ कड़े शब्दों का प्रयोग हो गया हो, जिसे निष्पक्ष आलोचक बचा नहीं सकता। लेकिन फिर भी मैंने किसी का दिल दुखाने के उद्देश्य से कुछ नहीं लिखा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है यह पुस्तक मेरे एम० ए० में स्वीकृत प्रबन्ध का परिवर्द्धित रूप है; जिसकी प्रेरणा आचार्य गुरुवर डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी से मिली और उन्हीं के प्रोत्साहन का फल है कि यह यहाँ तक आ सका। गुरुवर ने अपने अत्यधिक व्यस्त कार्य-क्रम से समय निकाल कर इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ने की तथा भूमिका लिख देने की जो कृपा की उसके लिये कृतज्ञता ज्ञापित करने की धृष्टता कैसे करूँ? इसमें जो खूबी है वह उनकी और खामी मेरी। किन शब्दों में उनके स्नेह और अमूल्य सुझावों को स्मरण करूँ।

यदि पं० कान्तानाथ जी पाण्डेय के अनुभवों और पुस्तकों का सहारा न मिला होता तो इसका यह परिवर्द्धित रूप पाठकों के सामने न आता। इसलिये गुरु-तुल्य पाण्डेय जी का आजीवन आभारी हूँ।

अंत में चौखंबा विद्याभवन के उत्साही नवयुवक कार्यकर्ता श्री मोहन दास, श्री विट्ठल दास और श्री वल्लभ दास को धन्यवाद दिए बिना यह कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। उन्हीं के उदार व्यवहार का यह फल है कि प्रकाशक और लेखक के बीच होने वाली कठिनाई का मुझे अनुभव नहीं हुआ और पुस्तक इतनी शीघ्रता से छप सकी।

पुस्तक का प्रकाशन शीघ्रता से हुआ है अतएव त्रुटियों का होना स्वाभाविक है, आशा है सहृदय पाठक क्षमा कर देंगे।

काशी-भवन
वाराणसी
१ जनवरी १९५९

बी० एम० चिंतामणि

विषय-सूची

पहला अध्याय

ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य

ऐतिहासिक कथानकों वाले उपन्यासों की पृष्ठभूमि

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की पूर्व पीठिका :

मानव की यह प्रवृत्ति सर्वविदित है कि वह अपने से दूरस्थ वस्तु या स्थान के साथ काल्पनिक रागात्मक संबंध जोड़ लेता है। उन्नत गिरिशृङ्गों के पार क्या है, यह जानने के लिए हमारी भावनाएँ लालायित रहती हैं। इन्हीं मानवीय गुणों से प्रभावित होकर हम अपने देश, समाज या विश्व के बीते हुए क्षणों की मनोहारिणी कल्पना करके आनन्द सागर में गोते लगाते रहते हैं। अतीत के प्रति मानव में कौतूहल तथा राग रहता है। हमारे पूर्वज कैसे थे, उनका रहन-सहन कैसा था, उनके क्या कार्य कलाप थे, उस समय के परम प्रतापी राजा कैसे थे, उस समय की सामाजिक व्यवस्था कैसी थी, इन सब की कल्पना करने से ही मानसलहरी तरंगित होने लगती है और ऐसा अनुभव होने लगता है कि हमारा उसके साथ आत्मिक सम्बन्ध है। जिस प्रकार जीवन के बीते कठोर क्षणों के भी स्मरण मात्र से ही मानव का शरीर पुलकित और रोमांचित हो जाता है, ठीक उसी

प्रकार मानवता भी अपने अतीत की स्मृतियों के प्रति लालायित सी रहती है। इसका अनुभव केवल रसिक हृदय ही कर सकता है। इतिहास अतीत के तथ्यों का रक्षक है और काव्य उसे कल्पना से मांसल बनाकर उसे नव जीवन प्रदान करता है।

इतिहासकार अतीत के तथ्यों को खोजकर और उन तथ्यों को इधर-उधर बैठाकर भानुमती के कुनबे के रूप में खड़ा कर देता है और उसका आग्रह ऐतिहासिक तिथियों और स्थूल घटनाओं के प्रति अधिक होता है। इसके विपरीत कलाकार अपनी कल्पनाशक्ति के माध्यम से स्थूल सत्य के भीतर घुसकर सूक्ष्म सत्य को ढूँढ़ निकालने का सफल प्रयत्न करता है और उसको समाज के सामने प्रकाशित करता है। साहित्यकार उन मानवीय प्रवृत्तियों के माध्यम से जो देश-काल आदि की सीमा के बाहर हैं, इतिहास के निर्जीव स्वरूप को सजीव और पुष्ट बना देता है, जिससे वह सत्य निखर उठता है। साहित्य उस रूप की सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक, धार्मिक, सांस्कृतिक मान्यताओं का जीवन्त रूप खड़ा कर देता है। इतिहास के टूटे हुए अंशों को भरकर, सम्पूर्ण तथ्यों को एक सूत्र में बाँधता है। इस प्रकार अतीत को पुनर्जीवित करने में अपनी रोचक सरल शैली का प्रयोग करने के कारण ही उपन्यासकार सफल होता है। इन उपन्यासों का स्वरूप निश्चित करने में लोगों की मान्यताएँ भी भिन्न हैं। कुछ ने ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों की प्रधानता और कल्पना की न्यूनता को सर्वश्रेष्ठ माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि 'जब तक भारतीय इतिहास के भिन्न-भिन्न कालों की सामाजिक स्थिति और संस्कृति का अलग-अलग विशेष रूप से अध्ययन करने वाले और उस सामाजिक स्थिति के सूक्ष्म ब्यौरों की अपनी ऐतिहासिक कल्पना द्वारा उद्भावना करने वाले लेखक तैयार न हों तब तक

ऐतिहासिक उपन्यासों में हाथ लगाना ठीक नहीं'[1]। अन्य कुछ लोगों के मतानुसार इतिहास की कुछ प्रमुख घटनाओं और पात्रों को आधारित करके कल्पना का पुट देकर आलीशान महल खड़ा करना ही ऐतिहासिक उपन्यास की रचना है। कुछ लेखक ऐतिहासिक वातावरण को लेकर मन गढ़न्त स्वतन्त्र कथानक रखना ही श्रेयस्कर समझते हैं। ऐतिहासिक पात्रों को लेकर उनके साथ खेलवाड़ करना श्लाघ्य नहीं है। इस सिलसिले में गुप्त जी के साकेत की आलोचना करते हुए आचार्य शुक्ल ने कहा है कि 'किसी! पौराणिक ऐतिहासिक पात्र के परम्परा से प्रतिष्ठित स्वरूप को मनमाने ढंग से विकृत करना हम भारी अनाड़ीपन समझते हैं'।[2] 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' के आधार पर भिन्न-भिन्न मान्यताओं के अनुयायी अपनी मान्यता को ही सर्वोपरि मानते हैं। इन मान्यताओं की उत्कृष्टता का मूल्यांकन सहृदय पाठक तथा साहित्यिक कर सकते हैं।

आधुनिक रूप में जो उपन्यास उपलब्ध हैं वे हिन्दी के लिये नवीन हैं। इस प्रकार के साहित्य का सर्जन हिन्दी में पहले नहीं हुआ था। हिन्दी गद्य साहित्य के द्वितीयोत्थानकाल (सम्वत् १९५० से सम्वत् १९७५) में उपन्यासों की धूम मची। कल्पना की सफलता, चरित्र की व्यवहारिकता और जीवन की यथार्थता जैसी उपन्यासों में प्राप्त होती है वैसी कविता में नहीं। इसलिये गद्य के विकास के साथ ही उपन्यासों का विकास भी अवश्यंभावी था। इसका अधिक श्रेय बंगला, अंग्रेजी, मराठी तथा फारसी साहित्य को है। इस काल में अनुवादित उपन्यास खूब निकलने लगे और कुछ मौलिक उपन्यास भी लिखे जाने लगे। इन अनुवादों से यह लाभ हुआ कि लेखकों को ऐतिहासिक उपन्यासों के ढंग का अच्छा खासा

---

१ २. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ–५३७–६१५।

परिचय प्राप्त हो गया, जिससे मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रेरणा लोगों को प्राप्त हुई।

ऐतिहासिक उपन्यास का सर्जन करके उसके स्थान, काल और पात्र को ठोस रूप में देना ही उपन्यासकार की कसौटी है। विख्यात अमेरिकन लेखिका 'एडिथ ह्वार्टन' का कथन है कि 'प्रत्येक उपन्यास में किसी न किसी घटना अथवा दृश्य का वर्णन रहता है। समय तथा स्थान के महत्त्व का विचार करते हुए उनको किसी एक निश्चित शैली द्वारा श्रृङ्खलाबद्ध तथा क्रमबद्ध करके एक ढाँचे में ढालकर उनको एक सम्पूर्ण आकार में खड़ा कर देना ही उपन्यासों का स्वरूप है।' उपन्यास का स्वरूप खड़ा करना अत्यन्त कठिन है। इन ऐतिहासिक उपन्यास-कारों की जिम्मेदारी द्विगुणित होती है। उनके लिए इतिहास के प्रति सच्चाई और कला के प्रति निष्ठा रखना नितान्त आवश्यक होता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार का अध्ययन गहन और उसकी कल्पना के डैने अत्यन्त पुष्ट होने चाहिए जिससे वह उन्मुक्त उड़ान भर सके। हेनरी फील्डिङ्ग का मत है कि 'उपन्यासकार बिना प्रकाण्ड विद्वान् और दूरदर्शी बने सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।' ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना में कल्पना–शक्ति की पूर्ण आवश्यकता पड़ती है। कल्पना और ऐतिहासिक तथ्यों का सामञ्जस्य इन उपन्यासों के लिये नितान्त अपेक्षित है। ऐतिहासिक उपन्यासकार का ध्यान सदैव इस बात पर रहना चाहिए कि उसके उपन्यास में इतिहास तथा काल विरुद्ध बातें न आ जायँ। किसी ऐतिहासिक उपन्यास में शाहजहाँ बादशाह को अंग्रेजी वेश-भूषा में दिखाना और गुप्तकाल में मोटर की दौड़ का वर्णन करना ऐतिहासिक उपन्यास की हत्या करना है। ऐसी बातें जितनी ही कालविरुद्ध होंगी, हँसने वालों की संख्या भी उतनी ही

अधिक हो जायगी। इसलिए इस जमीन पर समझ बूझकर कदम उठाना पड़ता है। यही कारण है कि हिन्दी का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'तारा' कथानक की दृष्टि से सुन्दर होते हुए भी उक्त बातों की उपेक्षा होने के कारण मूल्यहीन हो गया है। अतः ऐतिहासिक उपन्यास में सफलता प्राप्त करने के लिए उपन्यासकार को तत्कालीन परिस्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान रखना चाहिए। वैसे तो हिन्दी उपन्यासों का आरम्भ कुछ लोग 'रानी केतकी की कहानी' से मानते हैं। हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवास दास लिखित 'परीक्षा गुरु' है।

हिन्दी उपन्यासों का आरम्भिक स्वरूप भारतेन्दु काल में ही बना। लेकिन हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी ने लिखे। यह हिन्दी गद्य साहित्य का द्वितीय उत्थान काल था। इन्हीं से हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों का आरम्भ होता है। इन्होंने 'रजिया बेगम', 'लीलावती', 'आदर्श सती', 'लवंगलता' (१८९०), 'लखनऊ की कब्र' आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इनके इन उपन्यासों के बारे में शुक्ल जी ने बड़ी कड़ी आलोचना करते हुए लिखा है कि 'उनके बहुत से उपन्यासों का प्रभाव नवयुवकों पर बुरा पड़ सकता है। उनमें उच्च वासनाएँ व्यक्त करने वाले दृश्यों की अपेक्षा निम्नकोटि की वासनाएँ प्रकाशित करने वाले दृश्य अधिक भी हैं, और चटकीले भी।' इस बात की शिकायत 'चपला' के सम्बन्ध में अधिक थी। एक और बात जरा खटकती है, वह है उनका भाषा के साथ मजाक। इतना सब होने पर भी ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में सर्वप्रथम पदार्पण करने के कारण इनका अपना महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यासकार कहना चाहिए।

उर्दू, बँगला, मराठी, गुजराती और आंग्ल साहित्य में लिखे गए उपन्यासों का हिन्दी पर प्रभाव :

हिन्दी में उपन्यासों का आविर्भाव सीधे पाश्चात्य उपन्यासों की नकल पर नहीं हुआ है। बँगला में हिन्दी से पहले ही पाश्चात्य उपन्यासों के ढर्रे पर अच्छे उपन्यासों का लिखा जाना आरंभ हो चुका था। अतः उसके अनुकरण पर हिन्दी में मौलिक उपन्यास लिखे गए और साथ ही बँगला उपन्यासों का अनुवाद होने लगा। भारतेन्दु ने 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रमा' नामक हिन्दी का सर्वप्रथम अनुवादित उपन्यास प्रस्तुत किया। हिन्दी गद्यसाहित्य के द्वितीयोत्थान काल में उपन्यास-कारों ने आलस्य का त्याग किया। इसी काल के भीतर अनुवाद भी खूब हुए। संवत् १९५१ तक बाबू रामकृष्ण वर्मा द्वारा उर्दू और अंग्रेजी से अनुवादित उपन्यास प्राप्त होते हैं। 'पुलिस वृत्तान्त माला' (१९४७), 'ठग वृत्तान्त माला' (१९४६), 'अकबर' (१९४८) 'अमला वृत्तान्त माला' (१९५१), 'चित्तौर चातकी' आदि का अनुवाद बँग भाषा से हिन्दी में उन्होंने संवत् १९५२ में किया। लेकिन यह अन्तिम ग्रन्थ चित्तौर की मर्यादा के विपरीत होने के कारण एक आन्दोलन का कारण बन बैठा और फलतः नष्ट कर दिया गया। इसी काल में बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'इला' (संवत् १९५१) और 'प्रमिला' (संवत् १९५३) का अनुवाद किया। इसके बाद 'जया और मधुमालती' के भी अनुवाद निकले।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी उपन्यासों के नये युग के निर्माण में आंग्ल और बंग साहित्य का प्रमुख हाथ रहा। लेकिन यह भी ध्यान देने की बात है कि उन दिनों अंग्रेजी में साहसिक जासूसी प्रेमचर्चा प्रधान उपन्यासों का भी अनुवाद हिन्दी में हुआ। लेकिन

किसी भी सांस्कृतिक और सामाजिक उपन्यासों का अनुवाद प्रायः अप्राप्य है। इसका एक मात्र कारण यही प्रतीत होता है कि लोकरुचि का परिमार्जन हिन्दी में नहीं हो पाया था। बंग साहित्य में उच्चकोटि के सामाजिक उपन्यास होते हुए भी कोई दुःखान्त सामाजिक उपन्यास नहीं लिखा गया। एकाध ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के अनुरोध से शोक-पर्यवसायी हो गए हैं। कई दुःखान्त बँगला उपन्यासों का अनुवाद करते समय इन्हें सुखान्त बना दिया गया है, यह उचित नहीं था। इस काल में अच्छी कृतियों का प्रचार नहीं था। ऐसा मालूम होता है कि अंग्रेजी के श्रेष्ठतम उपन्यास उस काल में प्रसिद्ध नहीं हो पाए थे। इसी से तो 'लंदन रहस्य' और 'लैला' जैसे प्रेमचर्चापूर्ण उपन्यास अनुवाद के योग्य समझे गए। उस काल में 'टाम काका की कुतिया' के रूप में एक अच्छा उपन्यास अवश्य अनूदित हुआ। बँगला से भी कुछ अच्छी कृतियाँ अनुदित होकर हिन्दी में आईं, जिनमें प्रमुख 'स्वर्णलता', दुर्गेशनन्दिनी', 'बंग विजेता', 'दीप निर्माण', 'युगलांगुरीय', 'कृष्णकान्त का वसीयतनामा' और 'माधवी कंकण' आदि प्रमुख हैं। आंग्ल उपन्यास साहित्य १८ वीं शती के पूर्व विकसित न हो सका था। मनोविज्ञान ने उपन्यास साहित्य में महान् परिवर्तन कर डाला। सामाजिक और राजनैतिक भावनाओं में परिवर्तन होने के कारण कथानकों और चरित्र चित्रण आदि पर विशेष प्रभाव पड़ा। दूसरा श्रेय प्रथम महा समर को है। वर्तमान यथार्थवाद की रूपरेखा का आरंभ हमारे प्राचीन साहित्य में है। अंग्रेजी में उपन्यास का आरंभ रिचर्डसन के 'पामेला' से माना जाता है। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि उपन्यास का आरंभ सोलहवीं शताब्दी के पूर्व नहीं हुआ था। वस्तुतः उपन्यासों का आरंभ १८ वीं सदी में 'डैनियल डिफौ' से हुआ। उसने 'राबिन्सन क्रूसो' (१७१९) की रचना की। यह बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है;

जिसमें कल्पना यथार्थ और मात्रानुभूति का संपूर्ण मिश्रण प्राप्त होता है। क्रुसो की पृष्ठभूमि काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ का आभास प्रस्तुत करती है। आंग्ल साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा को स्थापित करने का श्रेय 'सर वाल्टर स्काट' को है। ज्ञान और सुरुचि में शायद वाल्टर स्काट के जोड़ का कोई नहीं है। स्काट का पहला उपन्यास 'वेवर्ली' (१८१४) है। 'ऐण्टीक्वेरी' (१८१६), 'औल्ड मारटेलटी' (१८१६) आदि लिखे गए। इनमें तथ्य और कल्पना का सम्मिश्रण मिलता है। स्काट ने अपने परवर्तीय उपन्यासकारों 'बुलवर लिटन', 'थैयकरे', 'रीड', 'चार्ल्स इलियट' आदि सबको प्रभावित किया है। कालान्तर में इसका प्रभाव फ्रान्स से रूस तक और अटलांटिक पार करके अमेरिका तक पहुँच गया था। इस प्रकार उसने संपूर्ण विश्व में उपन्यास साहित्य को प्रभावित किया। १९ वीं सदी का अन्तिम उपन्यासकार 'टामस-लौ-पिकाक' (१८६६ से १८७५) था। यह रोमाण्टिक साहित्य का शत्रु था। इसने रोमाण्टिक साहित्य की मखौल उड़ाने वाले व्यंग्यात्मक उपन्यासों की एक नई परम्परा चलाई और 'मिसफारचून आफ एल्फिन' (१८२८) और 'क्रौचड़ का सेल'(१८३१) लिखा। इस प्रकार की परम्परा से प्रभावित अन्य उपन्यासकार 'अल्डसहक्सले' और 'चार्ल्स डिकेन्स' थे। चार्ल्स डिकेन्स (१८१२ से १८७०), १९ वीं सदी का सबसे बड़ा उपन्यासकार था। इसी का समकालीन लार्ड एडवर्ड लिटन'(१८३० से १९७३) भी था, जिसने प्रसिद्ध उपन्यास (ऐतिहासिक) 'दी-लास्ट-डेज-आफ-पाम्पिआई' (१८३४) की रचना की। यह उपन्यास कला की दृष्टि से बहुत ही खरा उतरता है। इस प्रकार आंग्ल-साहित्य का प्रभाव हिन्दी पर लक्षित होता हुआ दीखता है।

पहले उक्त आंग्ल उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में नहीं हो पाया

था। लेकिन अब अंग्रेजी साहित्य से अनूदित हिन्दी में बहुत से उच्च-कोटि के उपन्यास उपलब्ध हैं और इन उपन्यासों के अध्ययन के कारण ही हिन्दी उपन्यास साहित्य को नूतन मार्ग प्राप्त हुआ है।

मराठी का उपन्यास-साहित्य बहुत ही परिपक्व और समृद्ध है। इसमें एक से एक उच्चकोटि के उपन्यास हैं, जिनमें से प्रमुख 'हदपार' और 'गरम-बीचा-बाबू' बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। १९४७ में प्रकाशित वेविलकर की 'सुनीता' यह भी मानवता पूर्ण चित्रण से परिपूरित है। उपन्यासकारों की पुरानी बृहद्त्रयी फड़के, दाण्डेकर और माण्डहोलकर निरन्तर मराठी उपन्यास साहित्य की श्री-वृद्धि करते रहे हैं। 'उषाकाल' के लेखक श्री हरिनारायण आप्टे ने भी इस क्षेत्र में काफी प्रगति की और उनकी ख्याति भी बहुत बढ़ी है। उनके उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में भी हुआ है।

गुजराती के प्रमुख उपन्यासकार मनुभाई पञ्चोली है। सरोजिनी मेहता का 'अमरबेल' नामक उपन्यास हिन्दू समाज की अवस्था का पूरा-पूरा वर्णन करता है। गुजराती उपन्यास साहित्य, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी तथा रमणलाल बसन्तलाल देसाई आदि लब्ध-प्रतिष्ठित उपन्यासकारों की कलाकृतियों के अक्षयदीप से प्रकाशित हो रहा है और उनके व्यक्तित्व तथा काव्यात्मक शैली का पूर्ण प्रभाव हिन्दी के उपन्यास साहित्य पर अविरल रूप से पड़ रहा है। इस प्रकार मराठी और गुजराती का उपन्यास-साहित्य, जो पूर्णता एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त हो चुका है, हिन्दी के उपन्यास क्षेत्र को विना प्रभावित किये नहीं रह सका। जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक उपन्यास एवं अनूदित उपन्यास अब दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

उपरोक्त भाषाओं के ऐतिहासिक उपन्यासों में कथानक और शैली की दृष्टि से विकासात्मक अध्ययन :

भारत में विदेशी शासन के स्थापनोपरान्त भारतीय हित के लिये संग्राम खड़ा हो गया और इसी के परिणामस्वरूप १८५७ का विद्रोह था। राष्ट्रीय विकास के साथ ही साथ उर्दू साहित्य भी इन प्रभावों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। यह परिवर्तन साहित्य के एक क्षेत्र में दिखाई पड़ने लगा। उर्दू उपन्यास 'दास्तान' आदि विशेषरूप से समृद्ध थे और फारसी से ज्यादातर अनुदित थे। इसमें अलौकिक शौर्य एवं जादू के खेलों के ही वर्णन रहते थे। वास्तविक रूप से उर्दू उपन्यास साहित्य का आरम्भ पंडित रतननाथ सरसार के 'फ़सानाए-आज़ाद' १८७८ में जिसमें कि लखनऊ के जीवन का वर्णन है। ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में 'दिले गुदाज़' अब्दुल हलीश शरर का है। प्रेमचन्द जी ने भी सामाजिक यथार्थवाद को लेकर जो उपन्यास लिखा वह भी उर्दू साहित्य को प्रभावित किये बिना नहीं रह सका। उर्दू साहित्य पर आंग्ल साहित्य का प्रभाव भी पड़े बिना नहीं रहा, जिसके फलस्वरूप कुरर्तुल-ऐन-हैदर ने 'जेम्स जौयस' के नकल करने का प्रयास किया। उर्दू उपन्यास साहित्य हिन्दी साहित्य से पुराना होने के कारण इसका थोड़ा बहुत प्रभाव किसी न किसी रूप में हिन्दी साहित्य पर पड़ा, लेकिन इसमें बहुत कुछ कमी है और इसका एक मात्र कारण उर्दू साहित्यकारों का बृहद् अध्ययन का न होना ही है।

हिन्दी साहित्य पर जितना अधिक प्रभाव बँगला साहित्य का पड़ा है शायद ही और किसी अन्य साहित्य का हिन्दी के उपन्यासों पर नहीं पड़ा। हिन्दी में सर्वप्रथम उपन्यास अनुवाद के रूप में आये और यह अनुवाद बँगला के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों के थे। श्री रमेशचन्द्र

दत्त, आई० सी० एस० ने भी उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास बँगला में लिखे। इसके बाद शरतचन्द्र ने अपने यथार्थवादी साहित्य के द्वारा बंगला के पाठकों के भीतर तूफान पैदा कर दिया और इनके उपन्यास हिन्दी में भी अनूदित हुए। बंग साहित्य के उपन्यासकारों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। १—जो शरत् चन्द्र की परम्परा में दीक्षित लगते हैं, जैसे ताराशंकर बंद्योपाध्याय। बँगला साहित्य में उपन्यासों की परम्परा श्री राखालदास बन्द्योपाध्याय आदि द्वारा चलाई हुई मालूम पड़ती है, जिसका कि प्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी साहित्य पर है।

मराठी साहित्य के अध्ययन करने पर और उसका प्रभाव हिन्दी साहित्य में अगर देखना हो तो उन उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद देखकर किया जा सकता है। मराठी साहित्य में सर्वप्रथम उपन्यासकार के रूप में बाबा पद्मन जी का 'यमुनापर्यटन' १८५७ में लिखा पाया जाता है। यह एक समाज-सुधार प्रधान उपन्यास के रूप में है। मराठी का उपन्यास साहित्य बहुत शीघ्र ही पूर्ण और परिपक्व हो गया था। प्रसिद्ध उपन्यासकार के रूप में श्री हरिनारायण आप्टे (१८६४-१९१९) ने 'मधली स्थिति' प्रस्तुत किया, जो कि एक सामाजिक उपन्यास के रूप में ख्याति को प्राप्त हुआ, लेकिन आप्टे जी ने ऐतिहासिक रोमांस अधिक लिखे। इनके रोमांस उपदेश के लिये प्रयुक्त किये गये। उस काल के लेखकों के प्रवृत्ति के बारे में यह सच ही कहा है कि 'बुद्धिवादी तथा राष्ट्रीयतावादी दोनों आत्मतृप्ति और रूपकों के लिये रोमांस की ओर झुकते थे। साधारण पाठक भी उन्हीं के साथ थे, उसे सामाजिक समस्याओं के प्रति धैर्य नहीं था, एक तो इस कारण से कि उनका विश्वास था कि ऐसी कोई समस्या ही नहीं है, जिसके लिये वह उन समस्याओं को टाल देना चाहता था। जब बाद में इतिहास से वह

अघा गया, तब केवल सामाजिक समस्याओं की ओर रुचि बदलने के लिये, वह देखने को तैयार था। तब ऐसे लेखकों ने उस पाठक से संतोष और प्रशंसा प्राप्त करने के लिए इन सामाजिक समस्याओं को नए रोमांस में लपेट कर पेश किया'।[1] आप्टे जी ने ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे। उपन्यास में रोमांस एवं उपदेशात्मकता का सम्मिश्रण करने के कारण वैद्यजी, पराँजपे आदि के उपन्यास ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में हलके हो गए। बंगला का प्रभाव मराठी उपन्यास साहित्य पर पड़ा और उपन्यास की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए मराठी उपन्यासकारों ने पाठकों को सुधारना आवश्यक समझा, जिसके फलस्वरूप वामनमल्हार जोशी ने 'रागिणी' (१९१५) प्रस्तुत किया। इसके अनन्तर उपन्यास साहित्य निरन्तर प्रगति को प्राप्त हुआ और पेंड-से, विवलकर आदि उपन्यासकार इस क्षेत्र में अवतरित हुए। इन सब उपन्यासकारों की प्रगति एवं शैली के कारण ही इसका प्रभाव हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर पड़ा और हिन्दी में आप्टे जी का मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास 'उषाकाल' अनुवाद के रूप में आया।

गुजराती साहित्य पर वैदेशिक प्रभाव अर्थात् पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के फलस्वरूप ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास १८३३ से ही प्रारम्भ हो गया था। १८४६ के लगभग 'सरस्वतीचन्द्र' नामक उपन्यास चार खंडों में लिखा जा चुका था, जो कि सम्पूर्ण गुजराती साहित्य का सर्वोत्तम ऐतिहासिक ग्रन्थ है। उपन्यास साहित्य में ऐसा कोई खास विकास नहीं दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि यह गुजराती साहित्यकारों का अपना ही एक प्रिय विषय है। इसमें पुरानी एवं

१. आज का भारतीय-साहित्य-साहित्य अकादेमी-राजपाल एण्ड सन्स-प्रकाशक पृष्ठ २३८-२३९।

नवीन पीढ़ी के अत्यन्त ही ख्याति प्राप्त उपन्यासकार है, जैसे मुंशी जी, रमणलाल देसाई, पन्नालाल पटेल और सारंग बारोट। इतना सब होने पर भी उच्च कोटि का उपन्यास गुजराती साहित्य में नहीं है। ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में लोगों का यह मत है कि 'ऐतिहासिक उपन्यासों में अभी भी यह वृत्ति है कि प्राचीन की अतिरञ्जना करो और गौरव गान गाओ। ब्रिटिश शासन के दिनों में कदाचित् हमारी स्वतन्त्रता के संघर्ष का यह आवश्यक भाग रहा हो, जिससे कि जनता में स्वाभिमान की भावना पुनः जाग सके। इस कारण यह वृत्ति बढ़ी कि हमारे अतीत काल का अच्छा एवं प्रशंसनीय अंश ही कलात्मक रूप से व्यक्त किया जाय'।[1] ऐतिहासिक सामग्री बदलते तो नहीं हैं, लेकिन उनका अर्थ संकोच या विस्तार व्यक्ति विशेष के ऐतिहासिक ज्ञान के ऊपर आधारित होता है। अगर ऐतिहासिक उपन्यासकार का केवल अतीत की गौरवमयी गाथा का वर्णन करके वर्तमान को उससे हीन दिखाना ही उद्देश्य है तो वह कभी भी सफल उपन्यासकार नहीं हो सकता। वह सफल तभी हो सकता है जब कि वर्तमान की बुराइयों को, भूत की अच्छाइयों के साथ तारतम्य को स्थापित करके त्रस्त जनता को अगर सच्चा मार्ग प्रदर्शित करते हुए सत्यम् शिवं सुन्दरम् का संदेश प्रस्तुत करे तो वह साहित्य और साहित्यकार सार्वकालिक होता है। इस प्रकार के उपन्यासकारों की कमी गुजराती साहित्य में दिखाई पड़ती है। इसमें भी बहुत से उपन्यास अनूदित हुये हैं, जिनके द्वारा गुजराती साहित्य बहुत कुछ अंशों में प्रभावित हुआ है। लेकिन गुजराती उपन्यासकार अपने दंभ की तुष्टि के लिये उसे व्यवसायिकता का नाम देकर बाजार में चालू किया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य (चाहे ऐतिहासिक या सामाजिक) ये सब

---

१. आज का भारतीय साहित्य–पृष्ठ १३१।

अन्य भारतीय साहित्य के समकालीन या बाद का होने के कारण प्रभावित तो अन्य साहित्यों से हुआ ही है, लेकिन इसका उपन्यास साहित्य अन्य भारतीय साहित्यों के उपन्यासों से अगर उत्कृष्ट नहीं है तो बराबर है ही। गुजराती उपन्यासकारों की आदर्शवादी वृत्ति के कारणों को प्रदर्शित करते हुये कहा है कि 'गुजराती लेखक की समकालीन समाज के प्रति जैसी वृत्ति उसकी रचनाओं में दिखाई देती है वह उसके आदर्शवाद के कारण अर्थात् एक अच्छे समाज के प्रति उसकी पिपासा के कारण है, उसके आसपासके प्रत्यक्ष भ्रष्टाचार के कारण नहीं'।[1]

आंग्ल साहित्य का प्रभाव बहुत कुछ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप में हिन्दी साहित्य पर पड़ा है। वास्तव में उपन्यास की प्रगति पाश्चात्य साहित्य से प्रेरित होकर हुई है। लेकिन इसका सीधा प्रभाव हिन्दी पर नहीं पड़ा, अपितु बंग-साहित्य पर पड़ा और बंगला के उपन्यास-साहित्य का प्रभाव हिन्दी पर पड़ा। वास्तव में आधुनिक उपन्यास का वास्तविक विकास योरोप के सांस्कृतिक जागरण से होता है। आंग्ल साहित्य में सर फिलिप सिडनी (आरकिड़िया), डेनियल डिफो (राबिन्सन क्रुसो) आदि उपन्यासों की रचना हुई। इसी के उपरान्त रिचर्डसन की 'पामेला' आदि अमर उपन्यासों की रचना हुई और उपन्यास-साहित्य उत्तरोत्तर प्रगति को प्राप्त हुआ और अठारहवीं शताब्दी, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख उपन्यासकार के रूप में ओलिवर गोल्डस्मिथ, जेन आस्टिन, सर वाल्टर स्काट और थैकरे आदि उपन्यासकार हो गये। जिस समय भारत में राष्ट्रीय जागरण हुआ उस समय तक योरोप का उपन्यास-साहित्य बहुत ही विशालता और सम्पन्नता को प्राप्त हो चुका था। इन उपन्यासों एवं

---

[1] 'आज का भारतीय साहित्य'-पृष्ठ १३२।

उपन्यासकारों का प्रभाव भारतीय साहित्य पर पड़े विना नहीं रह सका और यह प्रभाव सर्वप्रथम बंगला-साहित्य पर पड़ा। चूंकि बँग-साहित्य में हिन्दी-साहित्य से बहुत पहले उपन्यासों की रचना आरम्भ हो गई थी और उच्चकोटि के उपन्यास भी निकल चुके थे, उनका प्रभाव हिन्दी पर पड़ना अत्यावश्यक था और उसके परिणामस्वरूप अनुवाद के रूप में हिन्दी में बंगला के उपन्यासों के आने का एक मात्र कारण यही मालुम होता है। इसका मतलब यह नहीं है कि आंग्ल-साहित्य का प्रभाव हिन्दी पर नहीं पड़ा। हिन्दी पर उसका प्रभाव परोक्ष और अपरोक्ष रूप में पड़ा।

इस प्रकार से उपरोक्त तथ्यों को देखते हुये इस निष्कर्ष पर बड़ी ही आसानी के साथ पहुँचा जा सकता है कि उपरोक्त भाषा साहित्य के उपन्यासों का प्रभाव किसी न किसी रूप में हिन्दी पर पड़ा जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों को वर्तमान स्थिति तक पहुँचने में इनका प्रभाव बहुत कुछ अंशों में सहायक सिद्ध हुआ। जिसके फल स्वरूप ऐतिहासिक उपन्यासों के शैशव-काल में अनुवादों की भरमार ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

भारतीय परम्परा :—

हिन्दी साहित्य को 'उपन्यास' वर्तमान युग की देन है। संस्कृत साहित्य-शास्त्र में इसीलिये उपन्यास की कोई परिभाषा प्राप्त नहीं होती। वहां तो कथा और आख्यायिका ही उपन्यास की पूर्ति करती है। फिर उनकी संख्या भी संस्कृत में कम ही है। इस सिलसिले में 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी' और 'सोड्ढल' की 'उदय सुन्दरी' को कथा अल्पाधिक प्रसिद्ध है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' ने तो इतना अधिक महत्व प्राप्त किया है कि मराठी में कादम्बरी शब्द उपन्यास के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। अंग्रेजी में उपन्यास को 'नावेल' कहते हैं। इसी आधार पर गुजराती में उपन्यास के अर्थ में 'नवलकथा' शब्द का प्रयोग होता है। कथा साहित्य का विशिष्ट रूप से उपन्यास नाम-करण बंगला की देन है। जैसे अंग्रेजी की 'शार्ट स्टोरी' के लिये बँगला वालों ने 'गल्प' शब्द बनाया वैसे ही 'नावेल' को उपन्यास कहा। इस सम्बन्ध में उर्दू वाले सबसे पिछड़े रहे और उन्होंने 'नावेल' को 'नाविल' कह कर ही सन्तोष कर लिया।

इस प्रसङ्ग में यह भी उल्लेख्य है कि साहित्य के जितने नये-नये अङ्ग इधर सामने आये हैं वे प्रायः यूरोप की उपज है। हमारे साहित्य पर यूरोपीय साहित्य का प्रभाव अंग्रेजी के माध्यम से पड़ा है और भारतवर्ष में अंग्रेजी और अंग्रेज सर्वप्रथम बंगाल में ही प्रतिष्ठित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोपीय साहित्य के विविध रूपों का सर्वप्रथम अनुकरण बँगला में ही हुआ। अतः यह साहित्य आधुनिक था। अतः हिन्दी उपन्यासों में वर्तमान के प्रति राग लक्षित होता है। जीवन की जटिलता तथा सङ्घर्षों की अभिव्यक्ति के लिये सर्वोत्तम माध्यम उपन्यास है। राजा से लेकर रङ्क तथा सरस्वती पुत्र से लेकर महामूढ तक को साहित्य का यह अङ्ग आकर्षित कर रहा है। आज का युग यथार्थवाद का युग है और उसका स्पष्ट रूप उपन्यासों में चित्रित रहता है। आधुनिक उपन्यासों में कुछ मनोविश्लेषणवादी, प्रयोगवादी, मनोवैज्ञानिक तथा मार्क्सवादी है। लेकिन उन सब प्रकार के उपन्यासों से एक अन्य प्रकार का उपन्यास है जो हिन्दी साहित्य में उपेक्षित रहा, और इसलिये अपने महत्व को भी प्राप्त न कर सका। यह है ऐतिहासिक उपन्यास।

हिन्दी में सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का प्रयत्न आधुनिक युग के प्रथम चरण में पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने किया। उनका 'तारा' उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। परन्तु हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य है कि उस काल में बँगला साहित्य में अच्छे ऐतिहासिक उपन्यासों के रहते हुए भी गोस्वामीजी अच्छे उपन्यास नहीं लिख सके। इनके पात्रों के ऐतिहासिक होते हुए भी वर्णनप्रणाली में ऐतिहासिकता का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न बङ्किम चन्द्र और रमेशचन्द्र के ऐतिहासिक उपन्यासों का अनुवाद करके किया गया। इनके अनुवाद भी सफलता पूर्वक किये गये और जनसाधारण ने इसका हार्दिक स्वागत किया। 'दुर्गेश नन्दिनी', 'देवी चौधरानी'

तथा 'आनन्द मठ' को पढ़ने के लिये आज भी जनता लालायित रहती है। गोस्वामीजी के कुछ काल अनन्तर 'मिश्र बन्धुओं' ने 'विक्रमादित्य' और 'पुष्य मित्र' आदि की रचना की। 'तारा' की तुलना में यह प्रयास सफल रहा। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों के ऊपर बहुत ध्यान रक्खा गया है। पर इनकी दुर्बलता इनकी कृत्रिमता है। इन दोनों में सहजता का अभाव है। जो कला में यथार्थता के परिधान में अलंकृत करती। 'प्रसाद' ने भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों को जो तिमिराच्छादित थे, अपनी ऐतिहासिक दृष्टि से छानबीन कर उन कथानकों को कथा का विषय बनाया और हिन्दी साहित्य को नवीन उपहार के रूप में भेंट किया। लेकिन ये नाटकों तक ही सीमित थे। इन्होंने जीवन के अन्तिम वर्षों में उपन्यास द्वारा एक विशेष युग का चित्र अङ्कित करना चाहा और उन्होंने 'इरावती' नामक उपन्यास लिखा जो शुङ्ग संस्कृति से सम्बन्धित था, लेकिन काल के कठिन हाथों ने उनके इस प्रयास को पूर्ण न होने दिया, और वे असमय ही काल कवलित हो गये। लेकिन वह धारा जो प्रसाद ने चलायी वह अविच्छिन्न रूप से बह चली और आज कई सुन्दर ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी साहित्य के भण्डार की शोभा बढ़ा रहे हैं।

इसके अनन्तर ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रगति उपन्यासों के विकास के उत्तर काल में हुई। इस काल के कुछ प्रमुख लेखक निम्नलिखित है।

श्री चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी राहुल सांकृत्यायन, रांगेयराघव, भागवतशरण उपाध्याय, प्रतापनारायण, गुरुदत्त और यशपाल। परिणाम की दृष्टि से चतुरसेन शास्त्री ने हिन्दी की बहुत सेवा की। इन्होंने तीन उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। वे निम्नलिखित हैं:—'वैशाली की नगरवधू', 'वयं रक्षामः', 'सोमनाथ'। शास्त्री जी के जीवन में इस उपन्यास का प्रकाशन एक मोड़ उपस्थित

करता है। और ये उपन्यास बहुत सफल हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकारों की सफलता इसी में है कि जिस युग के व्यक्ति को नायक चुने उस युग का सजीव वर्णन करें जिससे पाठक वर्तमान को भूलकर उसी युग मे विचरने लगे। इसके अनन्तर ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में श्री वृन्दाबनलाल वर्मा से हिन्दी के पाठक परिचित हैं। इनके उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समावेश, भाषा और शैली में क्षिप्रता, सुन्दर प्राकृतिक चित्रण, चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विकास, यथार्थता का पुट आदि सभी का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। इन गुणों से अलंकृत होने के कारण ही वे हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों के अग्रणी हैं। इनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास गढ़कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, मृगनयनी, झांसी की रानी, मुसाहिब जू इत्यादि हैं। बुन्देलखण्ड का वीरता पूर्ण वातावरण ही इनका प्रिय विषय रहा है। इनके उपन्यास वीरता से ओत-प्रोत हैं तथा यथार्थ से पूर्ण। वर्मा जी ने प्रकृति को आनन्दमय माना है। तमाच्छादित रजनी की उन्होंने मानव की निराशापूर्ण हृदय से तुलना की है अथवा अश्रु के साथ मेघों की तुलना नहीं की। अपितु प्रकृति अपनी आनन्दमयता से मानव जीवन की घोर निराशा और व्यर्थता को आनन्दमय बना देती है। 'विराटा की पद्मिनी' के अन्त में 'कुमुद' का आत्मघात कितना करुण है। परन्तु प्रकृति की आनन्दमयता ने उस पर एक सौम्यता और आनन्द की सृष्टि कर दी है। कुमुद का बलिदान नहीं वरन् लेखक के द्वारा उसका वर्णन चातुर्य कुमुद को पद्मिनी की श्रेणी में ले जाकर बैठा देता है। इनके उपन्यासों के कथानक मध्यकालीन सामन्त संस्कृति के युग का है। इनके नायक इतिहास प्रसिद्ध तो नहीं हैं लेकिन ऐतिहासिक है। इतिहासकार और ऐतिहासिक उपन्यासकार में यही अन्तर है कि इतिहासकार प्रमुख घटनाओं को

चित्रित करता है, परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार प्रमुख नायकों के के चरित्रों तथा कार्य कलापों से चकाचौंध नहीं हो जाता है। अपितु छोटे-छोटे पात्र जो इतिहासकार द्वारा उपेक्षित है उनको अपनी कल्पना शक्ति का पल्ला पकड़ा कर और सौन्दर्य से विभूषित करके नूतन संसार का सर्जन करता है। यह वर्मा जी के 'कचनार' नामक उपन्यास में पर्याप्त रूप से परिलक्षित होता है। वर्माजी का 'विराटा की पद्मिनी' ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर चित्रित विशुद्ध रोमांस है। 'कचनार', 'मृगनयनी' इतिहास और रोमांस की मिश्रित उत्पत्ति है। उनके श्रेष्ठ शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़कुण्ढार', झांसी की रानी और अहिल्या बाई हैं। 'झांसी की रानी' की वीर मूर्ति से भारत का बच्चा बच्चा परिचित है। लेकिन उनके मानवी रूप का, नारी सुलभ कोमल हृदय का, सहृदय शासिका का जो रूप वर्मा जी ने चित्रित किया है वह इतिहास को नूतन दृष्टि प्रदान करता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं और हिन्दी जगत को उनसे बहुत आशा है।

आज की आंखों देखी घटना कल इतिहास की बात होती है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थ में भारत में सामाजिक और राजनीतिक जागरण हुआ। और इसके फलस्वरूप संघर्ष की सृष्टि हुई। राजनीतिक क्षेत्र में संघर्ष बहुत ही उग्र रहा। इस संघर्ष की प्रतिच्छाया साहित्य पर पड़ना अवश्यम्भावी है और पड़ा भी। इस प्रकार का संघर्षमग्र उपन्यास वातावरण प्रधान उपन्यास है। पात्र इतिहास प्रसिद्ध नहीं है। लेकिन घटना सत्य है, और विशुद्ध ऐतिहासिक तथ्य है। श्री गुरुदत्त की 'स्वाधीनता के पथ पर', 'विश्वासघात' इत्यादि उपन्यास इसी कोटि के हैं। इनके उपन्यासों में मार्क्सवाद, समाजवाद, साम्राज्यवाद, गांधीवाद सभी की व्याख्या है। ये उपन्यास ऐतिहासिक और राजनीतिक संघर्ष

की मिश्रित कहाँनी है। यशपाल जी ने कम्युनिस्ट तथा समाजवादी दल के कार्यों को ही अपने उपन्यास का विषय बनाया है। उनके 'देशद्रोही' में विभिन्न दलों की दलादली का बहुत ही उत्कृष्ट चित्रण हुआ है। इनके पात्र अधिकांश चुस्त, चपल, मेधावी, तरुण और तरुणियां हैं। 'दिव्या की कहानी' भारतीय इतिहास के उस युग से सम्बन्धित है जब बौद्ध धर्म का सूर्य अस्ताचल को प्रस्थान कर रहा था और गणराज्य अपने दम्भ में पूर्ण होकर विनाश की अवस्थः को प्राप्त कर रहे थे। वैभव और विलास का अभाव नहीं था। 'दिव्या' की गणना सुन्दर ऐतिहासिक उपन्यासों में की जा सकती है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में श्री राहुल सांस्कृत्यायन का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' अच्छे ऐतिहासिक उपन्यास हैं। प्राचीन भाषाओं के विद्वान होने पर भी इनकी रचनाओं में भाषा का दोष सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को लोगों ने आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना है। इसमें जितनी भावप्रवणता का आलेखन हुआ है, वह बाणभट्ट जैसे महाकवि के अनुरूप ही है। साधारण पाठक के लिए इनकी भाषा क्लिष्ट है। और यह कथा होकर ही इतिहास सी सत्य है। 'बाणभट्ट' का चरित्र चित्रण बहुत ही सुन्दर और सर्वाङ्गीण हुआ है। यह उपन्यास इस तथ्य की भी पुष्टि करता है कि बाणभट्ट की समस्त रचनायें अपूर्ण हैं। वास्तव में इस उपन्यास की गणना आधुनिक सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में होनी चाहिये।

भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' और रामरतन भटनागर की 'आम्बपाली' वातावरण प्रधान उपन्यास है और उनमें कल्पना की मात्रा भी अधिक है। ऐतिहासिक उपन्यासों में श्री राङ्गेयराघव का 'मुर्दों का टीला' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पाश्चात्य परम्परा :—

नाटकों और कविता की अपेक्षा उपन्यास, साहित्य का नवीनतम रूप है। इन उपन्यासों में सत्य का अंश इतना अधिक है कि कविता और नाटक दोनों की अपेक्षा मानव जीवन के चित्र को चित्रित करने के लिए उपन्यास का क्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत है। प्राचीन साहित्य रूपों को उपन्यास में नूतन कलेवर धारण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। यही कारण था कि यह नाटक आदि प्राचीन साहित्यरूपों से भी अधिक सफल हुआ है। उपन्यास ने मानव जीवन के मर्म के सूत्रों को पकड़ लिया है। उपन्यास का पात्र अगर आत्मान्वेषण कर पाता है तभी वह सजीव पात्र बन सकता है और उसमें प्राण प्रतिष्ठा होती है। जिस उपन्यास में मानवी पक्ष निष्प्राण और निर्जीव रहता है, वह उच्च कोटि का उपन्यास कदापि नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक मानव अपने जीवन प्रणाली में दूसरे से सर्वथा भिन्न रहता है यह उपन्यासकार का मुख्य कर्तव्य है कि वह इस प्रकार के चित्रों को सजीव रूप से चित्रिन करके उभाड़ कर प्रस्तुत कर सके। महान से महान कृतियां भी इसी प्रकार के आत्मोपलब्धि का ज्वलन्त चित्रण प्रस्तुत किया है। यह टालस्टाय के 'वार एण्ड पीस' में चित्रित है। इसमें विभिन्न आर्थिक वर्ग के लोग विभिन्न आय के लोग हैं, विभिन्न सम्प्रदाय, राजनीतिकता, विभिन्न पेशे आदि के लोग इस उपन्यास में प्राप्त होते हैं। इसी से थोड़े पृथक डास्टावस्की के उपन्यास हैं। विक्टर ह्यूगो से लेकर रोमाँरोला तक जितने भी उपन्यासकार हुए हैं और जिन्होंने महान काव्यों को प्रस्तुत किया है वे वैयक्तिक आत्मोपलब्धि को प्रस्तुत कर सकने में समर्थ हुए हैं।

१९ वीं शताब्दी के अन्त तक महान उपन्यासों की परम्परा प्रायः समाप्त ही दिखाई पड़ती है। रोमाँ रोलां का 'जां क्रुस्ताफ' उन महान

कृतियों की परम्परा की अन्तिम कृति की कही जा सकती है। बाद के जितने भी उपन्यास है उसमें गाम्भीर्य का कहीं भी नाम नहीं है और काम चलाऊ तौर पर मनुष्य का चित्रण किया गया है। साथ ही साथ वस्तु तत्वों का भी पूर्णतया अभाव है। उपन्यासकार अपने पात्रों में आत्मान्वेषण को न चित्रित करके सङ्कीर्ण सिद्धान्तों के आधार पर एकाङ्गी चित्र प्रस्तुत करना चाहता है। ऐसा आग्रह करने के कारण पात्रों का व्यक्तित्व और निजत्व समाप्त हो गया है। यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि पिछले अर्थ शतक में विश्व उपन्यास में मानव तत्व न्यून है। इस विघटन की सर्वप्रथम धारा यथार्थवाद की है जिसका उदय रोमांटिसिज्म से लिया है। रोला के यथार्थवाद को बाद में प्रकृतिवाद (नैचुरलिज्म) के नाम से सम्बोधित किया गया है। इस धारा में प्रवाहित उपन्यास मानव पत्त को द्विविधरूपेण प्रभावित किया है। यह धारा औपन्यासिक परम्परा को निःसन्देह न्यूनतम मार्ग का दिग्दर्शन कराती है। आगे चलकर इसी यथार्थ बाद में दो धाराएँ दृष्टिगत होती है। पहला मनुष्य को मानव के रूप में कल्पित करके और दूसरा समीष्ट की इकाई मानकर व्याख्या की है। 'डास्टावस्की' के उपन्यासों में मानव अन्धकार में भटकता हुआ प्रदर्शित होता है। राजनैतिक उपन्यासों के भीतर उस काल में ऐसी (अयथार्थ) सत्यहीन और अमानवी वर्णनों के पाये जाने के कारण वह पाठक को प्रभावित नहीं कर सका। इसका एक मात्र कारण यह है कि 'लेखकों ने यह भुला दिया कि मनुष्य इन सभी चिन्तन सम्प्रदायों एवं मतवादों से बड़ा है, उसकी जीवन प्रक्रिया इतनी गहन, बहुमुखी और वैभवशाली है कि वह किसी भी एक मतवाद द्वारा पूर्ण रूप से बांधी नहीं जा सकती।'[1] मनोविश्लेषण प्रधान उपन्यास के भीतर कई स्थानों पर कला निखर कर सामने आती है और

१. 'आलोचना'—उपन्यास अङ्क—१९५४, पृष्ठ—४।

मानवी पक्ष जीवन्त हो उठता है जो कि सोवियत रूस का प्रमुख उपन्यासकार 'गोर्की' और चीन का 'लूहसूँ'। इन दोनों के उपन्यासों में यह पक्ष दिग्दर्शित होता है। विश्व उपन्यास साहित्य के पिछले बीस वर्षों की यह प्रवृत्ति रही कि वे सङ्कीर्ण मतवादों से मुक्त होकर मानवतावाद की व्यापक और विशाल भूमि पर अपनी कला की प्रतिष्ठा करें। इसी कारण 'जान स्टीनवेक', 'आर्थर कस्लर' आदि ने स्पष्टरूपेण व्यक्त कर दिया है कि कथा साहित्य का सत्य मानव की आत्मोपलब्धि है न कि राजनीतिक मतवाद। उपन्यासों की प्रगति के साथ ही साथ मनुष्य के आत्मान्वेषण को सीमाबद्ध और लक्ष्य भ्रष्ट चित्रित करने के कारण ये उपन्यास अपना युगान्तरकारी प्रभाव नहीं डाल सके जैसा कि 'डास्टावस्की', विक्टर ह्यूगो' अथवा 'टालस्टाय' के उपन्यास आते हैं। उपरोक्त दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुये हिन्दी उपन्यासों को पाश्चात्य उपन्यास साहित्य के साथ सम्बन्धित करते हुये विवेचना की जाय तो यह निष्कर्ष पर बड़ी ही आसानी से पहुँचा जा सकता है कि 'हिन्दी उपन्यास को इस बात का श्रेय तो देना ही होगा कि लगभग चालीस वर्षों की अवधि में यह होड़ लगा कर आगे बढ़ा है और चार दशकों में हिन्दी अपनी सीमाओं और परिधियों के बावजूद अगर 'गोदान', 'गढ़कुण्डार', 'चित्रलेखा', 'शेखर' और 'बाणभट्ट की आत्मकथा' जैसी कृतियाँ प्रस्तुत कर सकी है, उसके प्रयास और सम्भावनाओं पर निराश होने और विक्षुब्ध होने का कोई कारण नहीं दीख पड़ता, किन्तु इस बात की आवश्यकता है कि उन अभावों पर ध्यान दिया जाय जिनके कारण हिन्दी उपन्यास की प्रौढ़ता पर सन्देह किया जाता है।'[1]

यूरोपीय कथा साहित्य में 'बौकैशियो' के दो शताब्दी बाद तक

१. समकालीन उपन्यास—सीमा एवं सम्भावनाएँ—'आलोचना'—१९५४।

'नावेले' की रचना होती थी जो कि एलिजाबेथ काल के आंग्ल साहित्य में 'नावेल' के नाम से आई। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक कला मानव के किसी भी रूप को चित्रित करने के लिये स्वतन्त्र थी इसी से सत्रहवीं, अठारहवीं शताब्दी के 'वनियन', 'डेनियल डिफो' आदि लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकारों ने समाज पर कठोर व्यङ्ग किया, जिसका संबल प्राप्त करके 'फिल्डिङ्ग', 'स्टर्न' आदि कलाकारों ने उपन्यास में यथार्थवादी रूप प्रस्तुत किया। इसी से उन्नीसवीं शताब्दी का कलाकार यह कहते हुए मालूम पड़ता है कि 'कला रुपये के लिये नहीं है, कला, कला के लिये है'।[1] ऐसे ही काल में रूस तथा फ्रांस के कथा साहित्य में नूतन परम्पराओं का सर्जन हो रहा था।' 'स्तान्दॉल' के यथार्थ चित्रण की शैली 'विक्टर ह्यूगो' तक आकर पुष्ट हो जाती है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रूसी उपन्यास साहित्य का जन्म हुआ और तुर्गनेव, डास्टावस्की के यथार्थ चित्र जो कि अन्य साहित्य में उतना सजीव नहीं था उसको सजीव रूप से चित्रिल रूसी उपन्यासकारों ने किया और उसकी पूर्णता को 'गोर्की' जैसे महान उपन्यासकार ने अपने कला कृति द्वारा किया। प्रतीकवाद, यथार्थवाद का विरोधी था और उसके प्रेरक 'रिम्बा', 'इलियट', 'जेम्स जौयस' आदि थे। प्रतीकवाद विशेष फला फूला। जिसके अभिवृद्धि के बारे में यह मत है कि 'प्रतीकवाद के अस्त्र थे रहस्यवादिता, सूक्ष्मता, दूरचता, अबोधगम्यता और आदर्शवादिता, शैली, छन्दों, एवं सङ्गीत के परिष्कार, कान्ट, हीगेल और शापेनहावर के दर्शनों की पृष्ठ भूमि। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में निरूपित होकर यह साहित्य धारा बीसवीं शताब्दी में विशेष फली-फूली।[2]

---

१. देखिये—राल्फ फाक्स—'दी नावेल एण्ड द पीपुल' तथा 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ द इङ्गलिश नावेल'—अध्याय—१०' (एस० डी० नील)।

२. उपन्यास की विकास यात्रा—'आलोचना'—उपन्यास अङ्क—१९५४।

बीसवीं शताब्दी में एक नूतन आन्दोलन अति-यथार्थवाद अथवा स्वच्छन्द-तावाद के बदले हुये रूप में 'रीड' आदि के द्वारा पोषित होकर उदित हुआ। आज के विश्व साहित्य में उपन्यासों में प्रगतिशील विकासोन्मुख शक्तियों को ह्रासशील मरणोन्मुख शक्तियों से घोर सङ्ग्राम करना पड़ता है। चीनी साहित्य अथवा पश्चिमी साहित्य के क्रान्तिकारी उपन्यास अभी तक अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके। इन्हीं सब वादों और आन्दोलनों का प्रभाव हिन्दी पर पड़ने के कारण हिन्दी के प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध उपन्यास लेखक अपनी सामाजिक चेतना के साथ अभिन्न सम्बन्ध जोड़ते हैं जिसके कारण विचलित होकर प्रसिद्ध साहित्य मनीषी आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी को कहना पड़ा है कि 'हिन्दी उपन्यास पर यथार्थवाद का आतङ्क बढ़ता जा रहा है। यथार्थवाद में कौशल एवं साधन का आधिक्य अखरने लगा है।' इस प्रकार विश्व उपन्यास साहित्य की यह परम्परा निरन्तर अग्रसर होती हुई अन्य भाषा-भाषी उपन्यासों पर अपना प्रभाव डालते हुये निरन्तर इस विशेष साहित्याङ्ग को प्रभावित करती हुई प्रगति के पथ पर अबाध गति से अग्रसर होती जा रही है।

हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गए, अतः ऐतिहासिक उपन्यासलेखकों की संख्या भी कम ही है। इसीलिए हिन्दी उपन्यास का यह क्षेत्र बहुत ही उपेक्षित सा रहा है। इतिहासकार केवल द्रष्टा होता है, उपन्यासकार द्रष्टा तो होता ही है, स्रष्टा भी होता है। फलतः ऐतिहासिक उपन्यासलेखक के कुछ विशिष्ट कर्त्तव्य भी होते हैं, जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय इतिहास की मर्यादा की रक्षा करना उसका ऐसा कर्त्तव्य है जिसकी उपेक्षा वह नहीं कर सकता। कला की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास अतिरिक्त दायित्व की अपेक्षा रखता है। यहां पर उपन्यासकार का कार्य दोहरा हो जाता है। एक ओर उसे ऐतिहासिकता की रक्षा करनी पड़ती है और अपने कथानक को सशक्त बनाने के लिए अतीत के गर्भ से अपरिचित अथवा विशिष्ट तथ्यों, घटनाओं, पात्रों और शब्दों को प्रमाण रूप में खोजकर जुटाना पड़ता है तो दूसरी ओर उसके सामने कथावस्तु की परिकल्पना, पात्रों में प्राणप्रतिष्ठा, सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण का यथातथ्य चित्रण आदि की समस्याएं गहन और जटिल

होकर उपस्थित होती हैं। वैसे देखा जाय तो यथार्थवादी उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास के दायित्व में कोई विशेष अन्तर नहीं है अर्थात् उसे एक प्रकार से ऐतिहासिक यथार्थ कहा जा सकता है। ऐतिहासिकता में कल्पना का प्रवेश एक प्रकार का प्रति-विज्ञान है। ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास प्रतीकात्मक महत्व की वस्तु बन गई है। प्राचीनता के मोह के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरण सामने आते हैं जिनसे स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि लेखक को उसकी प्रवृत्ति अतीत की ओर ले जा रही है। इस प्रवृत्ति के मूल में काम करने वाली प्रेरणाएं निम्नलिखित हैं:—

१—वर्तमान से पीड़ित और असन्तुष्ट होकर पलायन की भावना।

२—अतीत को वर्तमान से अधिक श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण समझने की भावना तथा उस भावना को कार्यान्वित करने का प्रयत्न।

३—अतीत के प्रति राग होने के कारण इतिहास में पूर्णरूपेण लिप्त रहने की उत्कट अभिलाषा।

४—जातीय गौरव, राष्ट्रप्रेम तथा वीरपूजा की भावना।

५—जीवन की किसी नवीन व्याख्या को ऐतिहासिक वातावरण के बीच रख कर प्रतिपादित करने की उत्सुकता।

उपर्युक्त भावनाओं में से कोई एक अथवा सब मुख्य या गौण रूप से लेखक को प्रेरित करती हुई ऐतिहासिक उपन्यास का बीजारोपण कर उसको वृक्ष रूप में विकसित करने का प्रयत्न करती हैं।

भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन राष्ट्रीय जागरण और उससे सम्बन्धित स्वातन्त्र्य युद्ध के साथ हुआ। इसी कारण हिन्दी में प्राप्य ऐतिहासिक उपन्यासों के भीतर अतीत की गौरव-गाथा तथा विगत वैभव के चित्ताकर्षक और मनोहर चित्रण एवं राष्ट्र

की उन्नति में प्राणोत्सर्ग आदि की भावनाओं का प्राधान्य दिखाई पड़ता है। विदेशी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को बेहद विकृत करके भारतीयों को संसार की दृष्टि में हीन सिद्ध करने का अथक प्रयास किया था। बौद्धिक और वैज्ञानिक ढङ्ग से उक्त भ्रमजाल का भञ्जन राखालदास वंद्योपाध्याय, काशी प्रसाद जायसवाल, अविनाश चन्द्र लाहा प्रभृति इतिहास के गवेषकों ने किया, परन्तु भावात्मक रूप में उनका सशक्त प्रतिवाद उपन्यासकारों ने किया और उसके फलस्वरूप 'बेकसी का मजार', 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' ऐसे उच्चकोटि के राष्ट्रीय भावनाओं को जागरित और आलोड़ित करनेवाले ऐतिहासिक उपन्यास निकले।

उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों को तीन भागों में कालक्रमानुसार विभक्त किया जा सकता है :-

(अ) भारतेन्दु काल तक।
(ब) प्रेमचन्द काल तक।
(स) प्रेमचन्दोत्तर काल के ऐतिहासिक उपन्यास।

(अ) भारतेन्दु काल तक :—

यह काल (१८८२ से १९१५) हिन्दी उपन्यास का आरंभिक और संक्रमण काल रहा है। इसमें ऐतिहासिक उपन्यास नहीं के बराबर लिखे गए। कुछ बंगला से अवश्य अनुवादित हुए जैसे 'रंगमहल-रहस्य'। इस काल में लेखकों की प्रवृत्ति प्रायः व्यंग्य और विनोद की ओर थी। नाटकों और निबंधों की ओर विशेष झुकाव था। लेकिन बंग भाषा का उपन्यास साहित्य इतना समृद्ध था कि उसका प्रभाव हिन्दी पर पड़ना अवश्यम्भावी था और नूतन ढंग के उपन्यासों की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरु' हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास था। इस उपन्यास में

दो बातें अत्यन्त रोचक हैं। पहली तो यह कि रमेशचन्द्र दत्त के अनुकरण पर उपन्यास के प्रत्येक अध्याय के आरंभ में नीतिवचन उद्धृत किए गए हैं जो कहीं पर तो अध्याय से संबंधित हैं और कहीं पर एकदम स्वतंत्र और निरपेक्ष हैं। दूसरी बात यह कि इसकी कथावस्तु दो भागों में विभक्त है। दो भागों में विभक्त करने का एक मात्र कारण यह था कि जो लोग मनोरंजन के लिए पढ़ना चाहते हैं एवं जो चिन्तन और मनन भी करना चाहते हैं उन दोनों के लिए पर्याप्त सामग्री इस उपन्यास में उपलब्ध हो सके। हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार होकर भी अपने इस गहरे दायित्व का अनुभव करना ही एक विलक्षण सी चीज है और यह स्तुत्य एवं गर्व करने योग्य भी है।

यही नहीं, इस गुट के अन्य उपन्यासकार भी अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक जान पड़ते हैं। नीतिसम्बन्धी उदाहरण इत्यादि देने की भावना पण्डित बालकृष्ण भट्ट में अधिक थी इसी से उनके उपन्यास 'सौ अजान एक सुजान' में स्पष्ट रूप से यह भाव दृष्टिगत होता है। इसी काल में बाबू राधाकृष्ण दास के 'निस्सहाय हिन्दू' में जीवन के सामाजिक पक्ष को महत्वपूर्ण दिखाया गया है। इस प्रकार देखा जाता है कि प्रारंभिक काल में दायित्व की भावना आधुनिक युग के उपन्यासकारों के भीतर दायित्व के प्रति जो अनुराग है उससे कई अंशों में अधिक थी। बंगला के उपन्यासों का साहित्य समृद्ध होने के कारण जो कुछ शून्यता हिन्दी में दिखाई पड़ी उसको दूर करने के लिए हिन्दी के उपन्यासकार अनुवादों के शरणागत हुए। अनुवाद करने का प्रयास स्वयं भारतेन्दु जी ने किया था। इसके बाद बहुत से अनुवादक हुए जिनमें ख्यातिप्राप्त और प्रमुख पंडित प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी हैं। इसके अनन्तर बाबू गजाधर प्रसाद सिंह ने 'बंग विजेता' और 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद किया एवं संस्कृत की

'कादम्बरी' की कथा को बंगला के आधार पर लिखा इसके अनन्तर बाबू राधाकृष्ण दास तथा कार्तिक प्रसाद खत्री आदि ने अनुवादों की जो परम्परा चलाई वह बहुत दिनों तक अबाध गति से चलती रही। ये सब उपन्यास सामान्य जन जीवन का मार्मिक चित्रण करने में सफल रहे। इस काल के अन्त तक एक प्रकार से अगर देखा जाय तो मालूम होगा कि अनूदित उपन्यासों का ताँता सा बंध गया था। इस प्रकार के अनुवादों से यह लाभ हुआ कि नए ढंग के सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों का अच्छा खासा परिचय हो गया और उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति और उसके अनुरूप उपन्यासकारों के भीतर योग्यता भी धीरे-धीरे आ गई। इस प्रकार से देखा जाय तो यह काल हिन्दी के उपन्यासों के लिए तो महत्वपूर्ण था ही लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासों को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त तथ्यों का परिशीलन करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस काल की महत्ता ऐतिहासिक उपन्यासों की दृष्टि में उतनी नहीं है जितनी सामाजिक और औपदेशिक उपन्यासों के लिए है।

(ब) प्रेमचन्द काल तक:—

हिन्दी उपन्यासों को दृष्टि में रखते हुए विचार करने पर ज्ञात होगा कि यह काल सर्वाधिक उन्नति और समृद्धि का काल है। हिन्दी के द्वितीयोत्थान काल (१९५० से १९७५) में ही उपन्यासों की अच्छी खासी प्रगति हुई है और उपन्यास साहित्य प्रगति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता हुआ प्रतीत होता है। इसके बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन ध्यान देने योग्य है। वे कहते हैं कि 'इस द्वितीयोत्थान काल में आदर्श और त्याग जैसा उपन्यासकारों में देखा गया वैसा और किसी वर्ग के हिन्दी लेखकों में नहीं। अनुवाद भी

खूब हुए और मौलिक उपन्यास भी कुछ दिनों तक धड़ाधड़ निकले'।[1]

बाबू रामकृष्ण वर्मा ने बहुत कुछ कृतियों का उर्दू और अंग्रेजी से अनुवाद किया था। इनके अनूदित उपन्यासों में 'ठग वृत्तान्त माला', 'पुलिस वृत्तान्त माला', 'अकबर', और 'चित्तौर चातकी' आदि हैं। अन्तिम दो उपन्यास ऐतिहासिक पात्रों को लेकर लिखे गए हैं। लेकिन अन्तिम उपन्यास 'चित्तौर चातकी' का चित्तौर के राजवंश की मर्यादा के अनुकूल न होने के कारण भयानक विरोध किया गया। बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने भी 'मधुमालती', 'प्रमीला', 'इला' आदि का अनुवाद किया। इस उत्थान काल के भीतर बङ्किम चन्द्र, चण्डीचरण, रमेश चन्द्र दत्त आदि बँगला के प्रसिद्ध उपन्यासकारों की बहुत सी उच्चकोटि की कृतियों का हिन्दी में अनुवाद किया गया। इन अनुवादों में सहृदयतापूर्वक योग देने वालों में स्वर्गीय पण्डित ईश्वरी प्रसाद शर्मा और पण्डित रूपनारायण पाण्डेय प्रसिद्ध हैं। इन अनुवादों के अतिरिक्त उर्दू, मराठी, गुजराती के भी अच्छे-अच्छे और लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकारों के उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में हुआ। इसके साथ ही अंग्रेजी के उपन्यासों का भी हिन्दी में अनुवाद देखने में आता है। कुछ लोगों का यह विचार है कि आंग्ल साहित्य में उच्चकोटि के उपन्यासों के होते हुए भी हिन्दी में अनुवाद रूप में जो कृतियाँ आईं वे बहुत ही निम्नकोटि की हैं। ऐसा कहने वाले अपने कथन के प्रमाण में 'लन्दन रहस्य' नामक पुस्तक पेश करते हैं। परन्तु यदि सत्य पर ध्यान दिया जाय तो 'लन्दन रहस्य' अनूदित रूप में पहले बँगला में आया और तत्पश्चात् हिन्दी में। साथ ही 'लन्दन रहस्य' को निम्नकोटि का उपन्यास भी नहीं कहा जा सकता। अंग्रेज आलोचकों ने जो 'लन्दन रहस्य' की उपेक्षा की है उसका कारण उस उपन्यास की हीनता नहीं है अपितु

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ–४९० ।

अंग्रेजों की अहमन्यता तथा परम्परा प्रेम (कञ्जर्वेटिज्म) है। वस्तुतः कार्ल मार्क्स को 'कैपिटल' लिखने की प्रेरणा जिस भाव से मिली थी वही भाव 'रेनाल्ड्स' का भी प्रेरक है। साथ ही रेनाल्ड्स ने अनेक अन्य ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे थे जैसे 'क्वीन मेरी आफ द स्काट्स', 'मैसेकर आव ग्लेल्को' आदि। ईमानदारी की बात यह है कि कथा-तत्व की दृष्टि से रेनाल्ड्स के ऐतिहासिक उपन्यास विश्वविश्रुत अंग्रेज ऐतिहासिक उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट के उपन्यासों से अगर श्रेष्ठ नहीं हैं तो कम भी नहीं हैं। हिन्दी में इसी समय रेनाल्ड्स के ऐतिहासिक उपन्यासों के भी अनुवाद हुए और यों तो 'लन्दन रहस्य'[1] की गणना भी ऐतिहासिक उपन्यासों में ही की जा सकती है।

इसी काल में अनुवादों के साथ मौलिक उपन्यास भी लिखे जाने लगे। इस काल के प्रथम मौलिक उपन्यासकार के रूप में बाबू देवकी-नन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी हैं। इन तीनों लेखकों ने अपनी लेखनी द्वारा तीन साहित्यिक धाराओं का अविरल स्रोत बहाया है और उसकी त्रिवेणी सङ्गम भी किया है। इन सबमें प्रमुख पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी थे जिनके बारे में शुक्ल जी का मत है कि 'साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए। इस द्वितीयोत्थान काल के भीतर इन्हीं को उपन्यासकार कह सकते हैं। और लोगों ने भी मौलिक उपन्यास लिखे पर वे वास्तव में उपन्यासकार नहीं थे, और चीजें लिखते-लिखते वे उपन्यास की ओर जा पड़ते थे; गोस्वामीजी वहीं घर करके बैठ गए, एक क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुन लिया और उसी में रम गए'।[2]

---

१. रेनाल्ड्स कृत 'मिस्ट्रीज़ ऑफ दी कोर्ट ऑफ लंदन।

२. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—पृष्ठ ५००।

६.त्री जी के तिलस्मी उपन्यासों तथा गहमरी जी के जासूसी उपन्यासों के पश्चात् हिन्दी उपन्यासों के विकास की द्वितीय श्रेणी पण्डित किशोरी लाल गोस्वामी से प्राप्त होती है। गोस्वामी जी की कला मुख्यतः यथार्थवादी थी परन्तु यथार्थ की भावना आधुनिक दृष्टि से इनमें बहुत स्वस्थ नहीं थी। इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार पण्डित लज्जाराम मेहता के अन्य उपन्यासों में दायित्व की भावना इन उपन्यासकारों से ज्यादा है। गोस्वामी जी के बारे में आचार्य शुक्ल जैसे मनीषी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि 'यह दूसरी बात है कि इनके बहुत से उपन्यासों का प्रभाव नवयुवकों पर बुरा पड़ सकता है, उनमें उच्च वासनायें व्यक्त करने वाले दृश्यों की अपेक्षा निम्नकोटि की वासनायें प्रकाशित करने वाले दृश्य अधिक भी हैं और चटकीले भी। इस बात की शिकायत 'चपला' के सम्बन्ध में अधिक हुई थी'।[1] गोस्वामी जी ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे और उनका अध्ययन करने पर अनायास यह भान होने लगता है कि इसमें कालदोष का पुट आ गया है। इनके प्रमुख उपन्यास 'रजिया बेगम', 'तारा' और 'लखनऊ की कब्र' है। भावप्रधान उपन्यास हिन्दी में बहुत कम हैं और जो हैं भी वे नहीं के बराबर ही हैं। भावप्रधान उपन्यासों की प्रचुरता बङ्ग साहित्य में पाई गई। तभी तो उसे देख कर बाबू ब्रजनन्दन सहाय बी० ए० ने दो उपन्यास हिन्दी में प्रस्तुत किये। (१) सौन्दर्योपासक, (२) राधाकान्त। इसी काल में यथार्थवादी उपन्यासों का भी सर्जन हुआ। प्रेमचन्द के सभी उपन्यास यथार्थवादी भावनाओं से ओत प्रोत हैं। प्रसाद के दोनों उपन्यासों 'कङ्काल' और 'तितली' में भी यथार्थवादी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन होता है। इस काल के उपन्यासों में समाजसुधार की प्रवृत्ति स्पष्टरूपेण परिलक्षित होती

१. देखिए—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

है। इसका प्रमुख कारण है उस काल की सामाजिक पतनावस्था और वासनाजन्य भावनायें जो कि उस युग के ऊपर हावी हो गई थीं। इस कारण लेखकों का दृष्टिकोण बदल गया था। सामान्य रूप से देखकर कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द, प्रसाद और वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। 'इरावती' इसका अपवाद है क्योंकि इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक है। कौशिक जी का उपन्यास 'मां' भी उसी प्रकार का है। राजनीतिक प्रवृत्ति को भी लेकर उस काल में उपन्यासकारों ने रचना की है। इनमें से प्रमुख प्रेमचन्द, यशपाल तथा राहुल सांकृत्यायन आदि हैं। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के उपन्यास भी हिन्दी साहित्य में दिखाई पड़ते हैं। जैनेन्द्र की 'परख' (१९३०) है। लेकिन इसका विकास प्रेमचन्दोत्तर काल में होता है। इस काल में भी ऐतिहासिक पात्रों को लेकर कल्पना की उड़ान भरी जाने लगी। इस काल में अपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में प्रसाद का 'इरावती' नामक उपन्यास है। प्रसाद जी ने इसे नाटक के रूप में लिखना आरम्भ किया था। बहुत कुछ लिख भी गए थे। फिर उसे उपन्यास रूप में लिखने लगे परन्तु उसे काल के कराल हाथों ने पूर्ण नहीं होने दिया। यह उपन्यास अगर पूर्ण हो गया होता तो संसार के उपन्यासों में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेता। इस ऐतिहासिक उपन्यास ने भविष्य के लेखकों के लिए प्रशस्त मार्ग खोल दिया। प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में आरम्भ से ही सामाजिक यथार्थता का आकलन हुआ है और अपने सामाजिक परिवेश के प्रति कलाकार पूर्ण रूप से जागरूक है। यह युग हृदयमन्थन का युग था। इसी काल में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का प्रयत्न और सूत्रपात श्री वृन्दावन लाल वर्मा और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कर दिया था जो कि तृतीयोत्थान काल में जाकर अत्यन्त प्रगति को प्राप्त हुआ।

(स) प्रेमचन्दोत्तर काल :—

प्रेमचन्द के आदर्शवादी यथार्थवाद ने हिन्दी उपन्यास को भिन्न-भिन्न क्षेत्र में आदर्श के साथ-साथ यथार्थ का विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया है। समस्त राष्ट्रीय चेतना के प्रति जागरूक होते हुए भी प्रेमचन्द में आधुनिकता नहीं थी। उनके उपन्यासों और कहानियों में उस परम्परा का शोधित और उज्ज्वल रूप कला के रूप में प्राप्त होता है, जिसमें प्रेमचन्द का दोष न होकर उस काल की प्रचलित विचारधारा का दोष है। नए आधारों को निर्धारित करने की प्रबल और उत्कट इच्छा सबके मन में थी। इसलिए उनके साथ नई पीढ़ी का संघर्ष, सांस्कृतिक परम्परा और आधुनिक विचारधारा का संघर्ष था। इसकी सफल अभिव्यक्ति भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' में स्पष्ट रूप से हुई है। इस काल में साम्यवादी, समाजवादी और गांधीवादी विचारधाराओं का उपन्यास के माध्यम से प्रचार हुआ। इसी काल में ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखन की प्रवृत्ति भी निरन्तर अग्रसर होती गई। राहुल सांकृत्यायन तथा वृन्दावनलाल वर्मा इस काल में प्रमुख उपन्यासकारों के रूप में दृष्टिगत होते हैं जिन्होंने श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। वृन्दावन-लाल वर्मा के 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'गढ़कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'मृगनयनी', 'मुसाहिब जू' आदि श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास हैं। राहुल सांकृत्यायन ने भी 'सिंह सेनापति', 'वोल्गा से गङ्गा', 'जय यौधेय' इत्यादि उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इसी काल में ऐतिहासिक उपन्यासकारों की श्रेणी में अपना अलग ही स्थान बनाते हुए श्रीचतुरसेन शास्त्री भी आते हैं। 'वैशाली की नगरवधू' आपका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें 'कथासरित्सागर' की अनेक कहानियों को ज्यों का त्यों उद्धृत कर लिया गया है। इन्होंने अन्य ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं जैसे 'आलमगीर', 'अपराजित' और

'धर्मपुत्र' है। परन्तु जैसा कि 'वैशाली की नगरवधू' के सम्बन्ध में कहा गया है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन उपन्यासों में इनकी मौलिक देन कितनी है। इनकी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' हिन्दी में बहुत दिनों तक मौलिक ऐतिहासिक कहानी मानी और जानी जाती रही है, जब कि वस्तुतः बहुत पहले एक बँगला मासिक पत्र में प्रकाशित हुई थी। तत्पश्चात् बँगला के एक कहानी-संग्रह में आई और वहाँ से उसका रूपान्तर गुजराती में हुआ। चतुरसेन जी ने गुजराती से उसे हिन्दी रूप दिया। लखनऊ की 'सुधा' के दूसरे या तीसरे अङ्क में जब यह कहानी प्रकाशित हुई तभी उक्त तथ्य प्रकट हुए। फिर भी चतुरसेन जी उसे बहुत दिनों तक मौलिक रूप में ही प्रचारित करते रहे। वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के उपन्यास लिखे हैं। लेकिन विशेषरूप से उन्हें ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में सफलता मिली है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय प्रायः बुन्देलखण्ड के प्राचीन गौरवमय ऐतिहासिक चरित्र हैं। ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना की सहायता से आप ऐसा रूप देने में सफल हुए हैं जो बहुत ही प्रभावोत्पादक होता है। यही इनके ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में सफलता का रहस्य है। इसी से वर्मा जी को हिन्दी का 'सरवाल्टर स्काट' कहा जाता है और यही सही भी है।

राहुल सांकृत्यायन मुख्यतः ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं लेकिन इन्होंने सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर भी उपन्यास लिखे हैं। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिकता की छाप है। प्राचीन भाषाओं के विद्वान् होते हुए भी इनकी रचनाओं में भाषा का दोष इतस्ततः दृष्टिगोचर होता है।

यशपाल के उपन्यासों में यथार्थवादी चित्रण बहुत ही प्रभावोत्पादक होता है। इनके बहुत से ख्याति प्राप्त उपन्यास हैं लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में जो ख्याति उनको प्राप्त हुई है वह इनके 'दिव्या' के द्वारा ही है।

श्री भगवती चरण वर्मा सामाजिक और राजनीतिक उपन्यासकार के रूप में ख्यातिप्राप्त हैं। लेकिन इन्होंने 'चित्रलेखा' नाम का एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखा है जो एक ऐतिहासिक कृति समझी जाती है। इसमें पात्र ऐतिहासिक हैं और कथानक का सर्जन उपन्यासकार ने अपनी कल्पना-शक्ति के माध्यम से किया है। निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो इसको एक प्रकार से समस्यामूलक उपन्यास कहा जा सकता है। इसको ऐतिहासिक उपन्यास कहना उचित नहीं मालूम होता। इसका एक मात्र कारण यह है कि ऐतिहासिक पात्रों के द्वारा पाप और पुण्य की एक प्रकार से व्याख्या और उस समस्या का हल एवं शंका का समाधान करते हुए उपन्यासकार अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचने को बाध्य होता है कि जो लोग समाज में भोगी समझे जाते हैं वे ही वास्तविक रूप में योगी होते हैं, और जो योगी समझे जाते हैं वे ही भोगी होते हैं।

हिन्दी के क्षेत्र में ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में डा० रांगेय राघव का भी एक विशिष्ट स्थान है। वैसे इन्होंने दर्जनों उपन्यास लिखे हैं। 'मुर्दों का टीला' इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त ने भी 'अमिताभ' और 'नूरजहां' दो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं जिनकी कथा-वस्तु अधिक प्रसिद्ध है। इसमें लेखक ने कल्पना की उड़ान कम भरी है। यह उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यास न मालूम होकर केवल एक ऐतिहासिक जीवन-चरित्र सा मालूम पड़ता है। इनके चरित्र तो शुद्ध ऐतिहासिक हैं फिर भी मनोविश्लेषणों के द्वारा लेखक ने आकर्षण भर दिया है, लेकिन अपने युगविशेष को नवीन वस्तु देने में उपन्यासकार सर्वथा असमर्थ रहा है।

इसी काल में आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आत्मकथा की प्रणाली पर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नामक एक उपन्यास जो कि ऐतिहासिक है प्रस्तुत किया है। इसकी कथावस्तु सम्राट् हर्षवर्धन के काल से ली गयी है। इसके कुछ ही पात्र ऐतिहासिक हैं लेकिन स्थान को छोड़ने से समस्त काल और घटनाएं काल्पनिक हैं। घटनाएं काल्पनिक होने पर भी युगानुकूल हैं। ऐतिहासिक पात्रों के जीवन की घटनाएं इतिहास में कहीं भी वर्णित नहीं हैं। किन्तु लेखक ने उन पात्रों के अनुरूप उनसे संबंधित घटनाओं को जन्म दिया है। पात्रों में वर्गगत और व्यक्तिगत दोनों विशेषताएं हैं। इस आत्मकथा को लिखने में विज्ञ लेखक को स्वयं बाणभट्ट बनना पड़ा और इस रूप में लेखक को अभूत-पूर्व सफलता प्राप्त हुई। ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में यह ग्रन्थ भी उच्चकोटि का है और अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

प्रेमचन्दोत्तर काल में और भी कई उपन्यासकार हुए जो कि अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न और विज्ञ हैं। इनमें प्रमुख डा० धर्मवीर भारती (सूरज का सातवां घोड़ा), श्री ऋषभ चरण जैन (राजा भोज, गदर), श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अलका, निरुपमा), श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव (बेकसी का मजार) आदि कई उपन्यासकार

हैं। अभी और भी लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार हैं जो कि अपने रचना-क्रम को जारी रखे हुए हैं, जिससे हिन्दी जगत को उनसे बहुत कुछ आशा है। इतिहास की गहन समस्याओं में हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने भले ही प्रवेश न किया हो किन्तु कई एक ने अपने उत्तरदायित्व को पर्याप्त मात्रा में समझा है जो उपर्युक्त विवरणों से स्पष्टरूपेण लक्षित होता है।

चौथा अध्याय

ऐतिहासिक उपन्यासों में कथानकों का आधार

जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है कि ऐतिहासिक उपन्यास का कथानक किसी ऐतिहासिक पात्र, घटना अथवा वातावरण को लेकर संबद्ध रूप से चलता है। इसमें यह भी आवश्यक नहीं कि ऐतिहासिक पात्र या घटना इतिहास में प्रसिद्ध ही हो। किसी भी साधारण से साधारण ऐतिहासिक पात्र को लेकर उसके सम्बन्ध में कल्पना के पुट से कथानक का सर्जन कर उपन्यासकार उपन्यास का सृजन कर सकता है जैसा कि पण्डित किशोरी लाल गोस्वामी ने अपने ऐतिहासिक

(अ) आधारों की मूल प्रवृतियां।

(ब) सामाजिक परिवेश।

(स) इतिहास के आधार पर कल्पना के पुट से आधुनिक समस्याओं का सन्निवेश।

(अ) आधारों की मूल प्रवृतियां :—

ऐतिहासिक उपन्यास में कथानक की मूल प्रवृति यह होती है कि कोई लब्ध-प्रतिष्ठ ऐतिहासिक पात्र के जीवन चरित्र को जो कि केवल ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में इतिहास में प्राप्त है उसको कल्पना के पुट से उसके सम्पूर्ण जीवन की भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या एवं वर्णाश्रम धर्म का विशद चित्रण करना ही उपन्यासकार का मूल लक्ष्य होता है। इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार कल्पना तथा मनोविज्ञान को ऐतिहासिक तथ्यों के साथ सम्मिलित करके कथानक को आगे बढ़ाते हुए उपन्यास का सर्जन करता है। उपन्यासकार ऐतिहासिक पात्र को लेकर चाहे वह साधारण हो अथवा असाधारण, कल्पना द्वारा विविध मानवी संवेदनाओं का विस्तार करके भावनाओं और विचारों के बीच एक नवीन सामंजस्य खोजने का प्रयास करता है और इसी सीमावद्ध रूप में जीवन के चिरन्तन सत्य को अधिक से अधिक अभिव्यक्त या प्रतिबिम्बित करने का लक्ष्य रखता है। इतिहास का लक्ष्य भी प्रायः यही होता है। लेकिन इसकी चिन्तन विधि और दिशा भी विभिन्न होती है। इसमें कल्पना के अंश कम लेकिन तथ्य ही समर्थित होकर क्रियाशील हो पाती है। कथा की कोई भी कल्पना विगत से सर्वथा उसी प्रकार अपने को मुक्त नहीं कर सकती जैसे इतिहास अपने को कल्पना से बिल्कुल पृथक नहीं कर सकता।

इन कथानकों की मूल प्रवृत्ति में कथानक के साथ-साथ इतिहास को पूर्ण वैज्ञानिकता से वंचित करना है। दूसरा यह कि इतिहास मात्र घटना संयोजन अथवा वीर महापुरुषों की गाथा न होकर चिरन्तन मानवी प्रवृत्ति के सन्तुलन में सामाजिक जीवन के आन्तरिक शक्ति की खोज है। तीसरे इतिहास को साहित्य की जाति में खींच लाता है। ऐतिहासिक कथानकों का रोचक होना भी कथानकों का आधार है। इसका कारण यह है कि इतिहास सत्य की खोज करते हुए स्वभाव से ही तथ्योन्मुख और तथ्योपेक्षित होने के कारण नीरस है। इसके विपरीत उपन्यास मानवीशक्ति की सरस उपलब्धि और स्थापना में तथ्यों की उपेक्षा करते हुए रोचक रूप में पाठकों के सामने आता है। तथ्य ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए बन्धन न होकर पोषक के रूप में आते हैं। उपन्यासकार को यहां तक छूट मिली है कि वह तथ्यों की भी कल्पना कर सकता है जो कि इतिहासकार के लिए असंभव है। ऐतिहासिक कथानकों को चुनने की मूल प्रवृत्ति यह भी है कि नूतन तथ्यों के ज्ञात होने पर इतिहास गलत हो सकता है लेकिन ऐतिहासिक कथानक को लेकर लिखा गया उपन्यास अगर शक्तिशाली बन सका है तो वह कभी महत्वहीन नहीं हो सकता। उपन्यासकार द्रष्टा और स्रष्टा दोनों है। अपने व्यक्तित्व को आरोपित करने का अधिकार स्रष्टा का मौलिक अधिकार है। इसी से ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय भी उसे उसके इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

इन्हीं प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने कथानकों में ऐतिहासिक पात्रों की आड़ देकर कल्पना की स्वतंत्र उड़ान भरने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें यही एक ऐसा क्षेत्र प्राप्त होता है जहां वे निर्बाधगति से आगे बढ़ने में सुगमता का अनुभव करते हैं। इसी से

उच्चकोटि के लब्ध-प्रतिष्ठ उपन्यासकार इतिहास के पात्रों का पल्ला पकड़कर आगे आते हुए से दृष्टिगोचर होते हैं।

(ब) सामाजिक परिवेश :—

ऐतिहासिक कथानक को लेकर उपन्यासकार उपन्यास का सर्जन करने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए अग्रसर होता है :—

१—भूत को वर्तमान से श्रेष्ठ समझकर उसको फिर से संस्थापित करने के लिए कटिबद्ध होकर अपने भावों को प्रस्तुत करना।

२—वर्तमान को सुदृढ़ करने के लिए अतीत से आदर्शोन्मुख वस्तुओं के संकलन की भावना।

३—जातीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापन और वीर-पूजा की भावना।

४—जीवन की नूतन व्याख्या करना।

इन सब भावनाओं में से कोई एक या कई संयुक्त होकर प्रमुख अथवा गौण रूप से वर्तमान सामाज की उन्नति के लिए प्रेरित होकर कथा को उपन्यास के भीतर लाकर उसका बीजारोपण करना ही है। इसमें अतीत के गौरव की गाथा, विगत वैभव का भावुक चित्रण तथा देश पर बलिदान हो जाने और प्राणोत्सर्ग करके भी आत्म सम्मान की रक्षा करने का भाव इन उपन्यासों में सर्वत्र दृष्टि-गोचर होता है। पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारत के गौरव-मय अतीत को अपनी ऐतिहासिक रचनाओं द्वारा बहुत ही विकृत किया है और उसमें यह दर्शाने का अथक प्रयास किया है कि भारतीय शौर्य, सभ्यता और संस्कृति विदेशियों की तुलना में हीनतर है। देश प्रेम से परिपूरित मनस्वी उपन्यासकारों ने इस खटकने वाली बात को लेकर वास्तविक वस्तुस्थिति को भारतीयों के सामने रखकर समाज को ऊँचे उठाने की

भावना से प्रेरित होकर और विरोध की भावना को हृदय में रखकर 'जय सोमनाथ', 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' आदि उपन्यास लिखे, जिनमें कि समाज के भीतर उस काल विशेष की भावना पूर्णरूपेण अपना स्थान बना सके और समाज का उत्थान हो। इधर कई उपन्यास साम्यवादी सिद्धान्तों से प्रेरित होकर एकांगी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी लिखे गए हैं, जिनमें वर्तमान विचार धारा को परिपक्व और पूर्ण करने के लिए अतीत के गौरव-मय इतिहास तथा उसके पात्रों का आश्रय लिया गया है। भारतीय स्वातंत्र्यसंग्राम में पूर्ण रूपेण सफल होकर तथा भारत में इसके अनन्तर गण राज्य, गण तांत्रिक शासन की स्थापना होने पर कुछ ऐसे भी उपन्यासों का संग्रह हुआ है जिनमें प्राचीन भारत की गौरवमयी गाथा का कल्पना मिश्रित वर्णन शक्ति के साथ अंकित किया गया है। इसके उदाहरणार्थ 'जय यौधेय' (राहुल सांकृत्यायन), 'वैशाली की नगर वधू' ('चतुर सेन शास्त्री') तथा 'मुर्दों का टीला' (डा० रागेय राघव) आदि है। इन तीनों उपन्यासों में गणतंत्रात्मक राज्य संचालन के विधान की समस्याओं को प्रकारान्तर से उठाया गया है जिसमें गण-तंत्र की परम्परा को अतीत के गौरव के साथ व्यक्त किया है। जीवन की अत्यधिक न्यून व्याख्या प्रस्तुत करने के उद्देश्य से कदाचित ही कोई उपन्यास लिखा गया हो। प्राचीन काल के प्रति सहज आकर्षण होने से तथा उससे प्रेरित होने के कारण 'बाणभट्ट की आत्मकथा' अवश्य उपलब्ध होती है जो कि ऐतिहासिक उपन्यासों की विशाल परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसका वास्तविक सौन्दर्य कथा की सत्यता प्रमाणित करने में, साहित्य-छल में तथा कथानक के प्रति लेखक की आत्मीयता में निहित है। ऐतिहासिक उपन्यासों के आदर्शों, मर्यादाओं तथा उसमें कल्पना और इतिहास के प्रयोग के बारे में हिन्दी

के ऐतिहासिक उपन्यासकारों की कुछ विभिन्न धारणाएँ हैं। कुछ का मत है कि इतिहास लिखते समय लेखकों का निजी दृष्टिकोण कुछ न कुछ काम करता ही रहता है। इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखने वाला भी अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण रखता है। ऐतिहासिक उपन्यास की सार्थकता केवल इसी में है कि पाठक के और लेखक के समाज को कोई कल्याणकारी प्रेरणा मिले। जनमत में परिवर्तन लाने एवं वेग उत्पन्न करने की शक्ति होनी चाहिए। जहाँ कहीं ऐतिहासिक तथ्य नहीं प्राप्त होते वहाँ हर लेखक अपने ज्ञान तथा कल्पनाशक्ति के बल पर टूटी हुई कड़ियों को जोड़कर निहित सत्यों का निरूपण करता है। श्रीचतुर-सेन शास्त्री ने अपने 'वैशाली की नगरवधू' नामक ग्रन्थ में अपने को 'इतिहास रस' का स्रष्टा घोषित किया है जिसे वे दसवाँ साहित्यिक रस मानते हैं।

अपने 'मुर्दों का टीला' की भूमिका में राङ्गेय राघव ने ऐतिहासिक परिपेषण, तटस्थता और वैज्ञानिकता का पक्ष लेते हुए हिन्दी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों पर बड़ा ही कठोर व्यङ्ग और तीव्र कटाक्ष किया है।

'मिश्र और एलाम सुमेर' और मोहनजोदड़ों के दार्शनिक तत्त्वों की झलक देने का मैंने प्रयत्न किया है। इसमें मैंने विशेष ध्यान रखा है कि उस काल के अनुसार ही उन सब का वर्णन किया जाय। आजकल हिन्दी में ऐसे बहुत से उपन्यांस निकल रहे हैं जिनमें अद्भुत बातें साबित कर दी जाती हैं, ऐसे अनेक उदाहरण हैं। खेद है, आपको यहाँ वह'दास-दासों' की सी बात करता मिलेगा। उसकी परिस्थिति प्रकट है। वह उस काल के दार्शनिकों की सी शिक्षित बहस नहीं कर सकता। न तो वह वैज्ञानिक भौतिक वाद मानता है, न द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक व्यवस्था ही। मैं समझता हूँ इतिहास को इतिहास की सफल झलक करके देना

ठीक है, न कि अपने आपको पात्र बनाकर किये-कराये पर पानी फेर देना। श्रीभगवत शरण उपाध्याय एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिनमें यह दोष नहीं है। मुझे उनसे काफी सहायता मिली है। किन्तु उनमें पौराणिकता काफी है'।[1]

डा० रांगेय राघव के इस उद्धरण से उनका आक्षेप और सीधा प्रहार यशपाल की 'दिव्या' और राहुल सांकृत्यायन के 'जय यौधेय' आदि पर है। इन दोनों ने आधुनिक मार्क्सवादी ऐतिहासिक व्याख्या को अपने उपन्यासों में समाहित किया है। राहुल के उपन्यासों में यह प्रवृत्ति सीमोल्लङ्घन कर गयी है। 'जय यौधेय' के प्रारम्भ में उन्होंने स्वयं कहा है कि 'उपन्यास के शरीर में ऐतिहासिक सामग्री ने अस्थि-पञ्जर का काम किया है और मांस हमने अपनी कल्पना से पूरा किया है'।[2] लेकिन वास्तविक रूप में इस दृष्टिकोण को रखकर अगर पाठक उपन्यास को पढ़ता है तो उसका अनुभव बिलकुल विपरीत सा होता है और वह उसको लेखक के स्वतः अनुभव का प्रतीक समझता है। लेखक का ध्यान इस ओर नहीं था कि शरीर को सजीव बनाने के लिए अस्थि और मांस के साथ प्राण की भी आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार कल्पना और ऐतिहासिक तथ्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करके समाज के भीतर अतीत के प्रति राग और गौरव की भावना को जागृत करने का प्रयास करते हुए उपन्यासकार कथानक को लेकर आगे बढ़ते हैं और समाज के उत्कर्ष की भावना को मूल में निहित करके कथानक के भीतर से आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

---

१. 'मुर्दों का टीला'—भूमिका—डा० रांगेय राघव।

२. देखिए—'जय यौधेय'—राहुल सांकृत्यायन।

(स) इतिहास के आधार पर कल्पना के पुट से आधुनिक समस्याओं का सन्निवेशः—

इतिहास में कल्पना नियन्त्रित और तथ्य सम्भावित होकर ही क्रियाशील हो पाती है। ऐसा इतिहास असम्भव है जिसमें कल्पना बिलकुल न हो। इतिहास के आधार को लेकर उस कालविशेष की नाना प्रकार की प्रवृत्तियों का विस्तृत और समीचीन अध्ययन करके जो कि आधुनिक समाज को आदर्श के पथ पर अग्रसर कर सके। कई उपन्यासकार आधुनिक समस्याओं तथा सामाजिक व्यवस्था की तुलना प्राचीन समस्याओं और व्यवस्थाओं के साथ करते हुए प्राचीन को नूतन की समानता में रखकर अपना प्रभाव अधिक दिखलाते हैं। हिन्दी साहित्य में प्राप्त ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रायः कल्पना का अंश अधिक और इतिहास के तथ्य का अंश न्यून मात्र रहता है, और इन उपन्यासों में सामाजिक रोमांस तथा सामाजिक व्यवस्था का परिवेश है। ऐतिहासिक उपन्यासों की सीमा निर्धारित करना या करने का प्रयत्न करना एक कठिन प्रयास होगा। हिन्दी के कुछ ऐसे प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में जिनका ठीक से अवलोकन किया जाय तो यह निश्चित रूप से ज्ञात होगा कि उनके भीतर इतिहास नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। उनमें केवल एक ऐतिहासिक भ्रम की सृष्टि की गई है, जैसा कि हिन्दी के दो प्रमुख उपन्यास 'विराटा की पद्मिनी' और 'चित्रलेखा' में दिखाई देता है। जहाँ तक ऐतिहासिक वातावरण का सम्बन्ध है 'विराटा की पद्मिनी' बहुत ही सजीव एवं यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण उपस्थित करता है। लेकिन जहाँ तक इतिहास के तथ्यों का प्रश्न है उसमें ऐतिहासिक तथ्य रंच मात्र भी नहीं है। इस उपन्यास के अन्दर वर्माजी ने मुख्यतः राजनीतिक तथा सामाजिक चित्रों की झाँकी दिखाने का प्रयत्न किया है। इसी में उन्होंने उस काल के उत्तराधिकार

के नियम को भी बतलाया है जिसमें दासीपुत्रों के लिये राज्याधिकार-व्यवस्था वर्णाश्रम धर्म में नहीं दी थी, लेकिन राजाओं को रखेलियाँ रखने की अनुमति तो देदी थी लेकिन उनसे उत्पन्न सन्तान के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। उपन्यास में इस समस्या को स्पष्ट नहीं किया गया है। कथानक अथवा घटना से भी यह स्पष्ट नहीं होता। उस काल में यह प्रथा भी प्रचलित थी कि मरते समय राजा जिस किसी निकट के व्यक्ति का नाम लेता था वह उत्तराधिकारी घोषित किया जाता था। इसी से 'विराटा की पद्मिनी' में कुञ्जरसिंह दासीपुत्र होते हुए भी राज्याधिकार को न प्राप्त कर सका। लेकिन इसी के विपरीत देवीसिंह राजा का निकट सम्बन्धी होने के कारण उत्तराधिकारी घोषित हो जाता है। कथानक को आगे बढ़ाने के लिए तथा सामाजिक व्यवस्था को यथारूप प्रस्तुत करने के लिए ही इन घटनाओं की कल्पना की गई है।

इसी प्रकार भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' उपन्यास एक विकट समस्या लेकर प्रस्तुत हुआ है। इसके अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि समाज अपनी चली आती हुई प्राचीन मान्यताओं को भी अन्तिम सत्य मान बैठता है जो कि भ्रान्तिमूलक है। सामाजिक मान्यताएं परिस्थितियों के वशीभूत होकर बनती और बिगड़ती हैं। इस उपन्यास की वास्तविक समस्या है 'पाप क्या है और उसका निवास कहाँ है?' परिस्थितियों के वशीभूत होने का स्पष्ट रूप यहाँ दिखाई देता है। परिस्थितियों के मध्य में कुमारगिरि का संयम स्खलित होता है। और इधर परिस्थितियों के प्रभाव में ही भोगी बीजगुप्त एक महान त्यागी बन जाता है।[1] आधुनिक समाज में भी हम जिसे अच्छा समझते हैं वही बुरा ठहरता है और जिसे हम बुरा समझते हैं वह अन्त में

---

१. हिन्दी उपन्यास—शिवनारायण श्रीवास्तव।

अच्छा बन जाता है। स्वयं भगवतीचरण वर्मा ने लिखा है कि 'चित्रलेखा में एक समस्या है, मानव-जीवन की अच्छाइयों और बुराइयों को देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है'।[1] जिसको कि उन्होंने श्वेताङ्क के माध्यम से उपन्यास में प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास पढ़ने से यह समझ पड़ता है कि संसार में पाप कुछ भी नहीं है, लेकिन इस समस्या का समाधान महाप्रभु श्वेताम्बर के इन शब्दों से हो जाता है कि 'अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो'। इस उपन्यास के द्वारा वर्माजी ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि परिस्थितियों के बीच से होकर चलने वाला मानव-जीवन श्रेष्ठ है, न कि परिस्थितियों से दूर रहकर। जिस व्यक्ति ने यह अनुभव ही नहीं किया और न जिसने जानने का ही प्रयत्न किया कि बुरी कही जाने वाली सांसारिक वस्तुओं का मानवजीवन में क्या स्थान है, अपितु अपने यथार्थ ही को सर्वश्रेष्ठ मान बैठा है, तो उसके लिए अवसर आने पर और अनुरूप वातावरण का सर्जन होने पर उसके पतनोन्मुख होने की सम्भावना अधिक रहती है क्योंकि वह इस मार्ग से नितान्त अनभिज्ञ रहता है और ऐसे व्यक्ति का एक बार स्खलित होकर फिर उठना असम्भव ही है। इसी के प्रतिकूल परिस्थितियों से सङ्घर्ष करते हुए जब व्यक्ति ऊँचा उठ जाता है तो समाज उसके प्रति पूर्ण और स्थायी सहानुभूति दिखलाता एवं श्रद्धावनत हो जाता है। चित्रलेखा में उपन्यासकार की दृष्टि में कुमारगिरि जीवन और परिस्थितियों से भागा हुआ है। उसमें शक्ति और साहस का अभाव है, जिसके कारण वह परिस्थितियों से सङ्घर्ष नहीं कर सकता। इसी से वह इतनी दूर भागा हुआ है कि पाप वृत्तियाँ उसके पास पहुँच न

---

१. चित्रलेखा–भगवतीचरण वर्मा।

पाएँ। वह पलायनवादी है। कठिनाइयों से दूर भाग जाना तथा परिस्थितियों से सङ्घर्ष करने का धैर्य न होना मानव की सबसे बड़ी दुर्बलता है। तृप्ति के पश्चात् की विरक्ति स्थायी होती है और अतृप्त वृत्ति को निश्चित ही एक न एक दिन तृप्ति के चरणों पर लोटना पड़ता है, यह मानव की भावनाओं का एकपक्षीय चित्रण लेखक ने किया है।

इसका दूसरा पक्ष बीजगुप्त है, जो कि भोगी है और जिसके हृदय में यौवन की उमंग है। उसने अपने प्राकृतिक यौवन का पूर्णानन्द उठाया और मन ने उस वस्तु को प्राप्त किया जिसको प्राप्त कर कुमार गिरि सुरक्षित न रह सका। भोगी बीजगुप्त योगी और योगी कुमार गिरि भोगी हो गया। नैतिकता के सम्बन्ध में उसका क्या सामाजिक मूल्य है उसको लेखक ने दर्शाया है। भारतीय समाज की नैतिक मान्यताएं भी आज वैसी नहीं रह गयी हैं जैसी शताब्दियों पूर्व थीं। ऐसा समय था जब आध्यात्मिक मूल्यों का महत्त्व अधिक था, जब कि आज भौतिक मूल्यों पर अधिक जोर दिया जा रहा है। आज विरक्त से भोगी को श्रेष्ठ माना जाने लगा है। वर्मा जी ने इस उपन्यास को इन्हीं दो पात्रों के माध्यम से मानवजीवनदर्शन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिकतम समस्याओं का सन्निवेश कल्पना के माध्यम से किया गया है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि व्यक्ति अपने अशान्त तथा अवचेतन के अंश को जिन्हें वह अपनी साधारण दृष्टि से नहीं देख पाता है उसे अपने किसी उपन्यास के पात्र द्वारा सहज में ही पहचान लेता है। जोन्स महोदय के मतानुसार सत्य का वास्तविक स्वरूप उपन्यास के अतिरिक्त सहृदय के अन्य किसी भी माध्यम से सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि सत्य तक

पहुंचने के लिए इतिहासकार की दृष्टि ही एक मात्र आधार है। उपन्यासकार का कर्तव्य है कि वह गिरे से गिरे चरित्र का भी ऐसे सजीव रूप में वर्णन करे कि उसके प्रति हमारी करुणा उभरे। जिस प्रकार जीवन के बहुत से जटिल तथा उलझे हुए पक्षों को तार्किक एकरूपता देना दार्शनिक का काम माना गया है, ठीक उसी प्रकार का दायित्व उपन्यासकार का होता है अर्थात् जीवन की विषमताओं में से एक अभूतपूर्व सामंजस्य को ढूँढ़ निकालना। वास्तविक उपन्यासकार किसी भी दार्शनिक से कम नहीं होता, किसी भी समाज में आनेवाली परम्पराओं और रूढ़ियों की पूर्ति उस समाज के अधिकांश सदस्यों के मन पर चढ़ी रहती है। ये अन्ध विश्वास से भी पूर्ण हो सकती हैं तथा मिथ्या भय एवं मिथ्या अहंकार से भी विकास के पथ पर समाज के अग्रसर होते ही प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विरोध (प्रिजुडिस) की भावना का जन्म होता है। 'प्रिजुडिस' पर विजय प्राप्त करने के लिए जिस व्यापक सहानुभूति की आवश्यकता होती है उसे उपन्यासकार ही दे सकता है। किसी भी राष्ट्र तथा समाज में एक विशेष प्रकार की चिन्तन-पद्धति को प्रवाहित करने में अथवा किसी परम्परागत विचाराधारा को नया मोड़ देने में उपन्यासों का तथा उनके कथानकों का प्रभाव ही अधिक पड़ता है। बंगाल की नारी-समस्या को सुलझाने में शरद् चन्द्र ने अपनी कल्पना तथा कला के माध्यम से जो कुछ किया उसे सैकड़ों समाजसुधारक एक साथ मिलकर भी नहीं कर सकते। ठीक उसी प्रकार भारत की कृषक तथा ग्राम-समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में प्रेमचन्द के प्रयास तथा उनके उपन्यासों के ऋण से समाजसुधारक कभी उऋण नहीं हो सकते। उपन्यास के कथानक इतने रोचक और कल्पनाभिषक्त होते हैं कि वे अपने पाठक के चेतन तथा अचेतन मन

पर इतने गहरे संस्कार छोड़ जाते हैं कि वे एक सर्वथा नवीन जीवन-दर्शन को जन्म दे सकते हैं। कथानकों का एक बड़ा दायित्व यह भी है कि अपने पाठकों को जीने की कला सिखाना। कथानक को जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालना चाहिए। 'रॉबर्ट गोरहम हेविस' का कथन है कि 'अंग्रेजी के प्रारंभिक उपन्यासकारों ने अपने पाठकों को उदारता, सहानुभूति, विनोद तथा नैतिक एवं सौंदर्यात्मक चेतना की शिक्षा दी। उन्होंने संस्थाओं को सुधारने तथा सामाजिक स्थिति को उन्नत करने की इच्छा उत्पन्न की। प्राचीन वाङ्मय में जितना महत्त्वपूर्ण स्थान महाकाव्य का है, आज के युग में उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान उपन्यास का है।' अगर सत्यान्वेषण किया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि उपन्यास महाकाव्य का ही एक परिवर्तित तथा आधुनिक रूप है।

प्रेमचन्द युग के कुछ अन्य उपन्यासकारों ने भी जीवन की बहु-झंझटी समस्याओं पर प्रकाश डालने तथा उनके समाधान ढूँढ़ने के लिए काफी प्रयत्न किया था। कौशिक जी, प्रसाद जी तथा सियाराम-शरण गुप्त जी के कुछ उपन्यास इस तथ्य का समर्थन करते हैं। आधुनिक उपन्यासकारों ने अपने दायित्व को आवश्यकता से अधिक समझ लिया है, जिसके कारण उनके उपन्यास घोर बौद्धिक और मनोविश्लेषण-वादी हो गए हैं। इस तथ्य को साधारण वाक्यों के माध्यम से ही पात्रों से कहलवाकर बड़ी आसानी से उपन्यासकार पाठक को हृदयगंम करा सका है। उसी को आजकल लम्बे वाद-विवाद के माध्यम से पूर्णरूपेण अप्रिय बना दिया गया है। प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तियों तथा स्थितियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने की शक्ति भर तो अवश्य रह गयी है परन्तु उपन्यास द्वारा अन्य गंभीर तथा गुरुतर

दायित्वों का उनमें बहुत कुछ अभाव है। डिकेन्स, डास्टा-वस्की तथा शरत् चन्द्र जैसी व्यापक जीवनदृष्टि तथा गहरी सहानुभूति आधुनिकतम उपन्यासकारों में कदाचित् नहीं है। प्राचीन उपन्यासकार अहम् को पहचानने का प्रयत्न करते थे जब कि आज का उपन्यासकार अहम् के माध्यम से जीवन का विश्लेषण करना चाहता है। अनुभूति-प्रवणता ही कथानक का प्राण है। आज का हिन्दी उपन्यास अपने कथानक में इतिहास के पात्रों को लेकर उनके माध्यम से कल्पना का पुट देकर प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का आधुनिक व्यवस्था के साथ तारतम्य स्थापित करके समग्र मानवता को संवेदना तथा उसको सहानुभूति की दृष्टि से देखने का प्रयत्न करे तो वह अपने दायित्वों का निर्वाह अत्युत्तम ढंग से कर पायेगा तथा विवाद से रहित रहेगा।

पांचवाँ अध्याय

कथानक के आधार पर यथार्थ और कल्पना का हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों में स्थान

हिन्दी साहित्य में उपन्यासों के विकास के साथ ही इनके कथानकों में यथार्थ की मात्रा अधिक और कल्पना की मात्रा केवल रस-निष्पत्ति के लिए ही रखी गई। कहने का तात्पर्य यह है कि उपन्यासों के विकास के आदि काल में उपन्यासों में सत्य के प्रति लेखकों में आग्रह कम था। केवल अपनी बुद्धि की उड़ान भरकर कल्पनाजनित आश्चर्यान्वित कारनामों को चित्रित करना ही उनका मुख्य ध्येय था। यद्यपि यह प्रवृत्ति लोकरुचि के अनुकूल ही थी तथापि साहित्य में वह स्थान न पा सकी, क्योंकि केवल कल्पनामूलक साहित्य तब तक साहित्य नहीं कहला सकता जब तक उसमें यथार्थ एवं सत्यांश न हो, अर्थात् जिस साहित्य का सम्बन्ध मानवजीवन से न हो और जो मानव-जीवनोपयोगी न हो उसे हम साहित्य नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें 'सहितस्य भावः' का अभाव ही रहेगा। ऐतिहासिक उपन्यासों में कथानक के आधार पर कल्पना और यथार्थ के स्थान को निरूपित करने के पूर्व यथार्थ और सत्य के अन्तर पर विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है।

यदि थोड़ी देर के लिए हम दार्शनिकों के इस कथन की उपेक्षा कर दें कि 'सत्यं ब्रह्म जगन्माया' अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है और संसार माया है, तो इस दृश्यमान जगत् में जो कुछ है वह सत्य ही है। जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं, अनुभव या अनुमान करते हैं, अथवा अन्तर मन में कल्पित करते हैं या बुद्धि से उसका आभास पाते हैं वह सभी सत्य है। इस प्रकार इन बाह्य इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी हम सत्य के रूप में पाते हैं उसके दो भेद हैं—(१) शाश्वत सत्य और (२) अनित्य सत्य। यदि यथार्थ ही सत्य है तो इन दोनों सत्यों का रूप भी यथार्थ ही है। इसका कारण यह है कि यथार्थ केवल बाह्य व्यक्त पदार्थों के रूप का ही नाम है। वही कल्पना सत्य कहला सकती है जिसका आधार वास्तविक जीवन का अनुभव हो। केवल आम के गुणों को सुनकर कोई व्यक्ति उसकी मिठास का वर्णन कल्पना से भले ही कर ले, परन्तु वास्तविक अनुभव के अभाव में वह सत्य नहीं कहला सकता। एक के लिए जो वस्तु काल्पनिक हो सकती है वही दूसरे के लिए यथार्थ भी हो सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि आज हम जिस वस्तु की कल्पना कर रहे हैं वह कल यथार्थ रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हो जाय। पक्षियों को आकाश में निराधार संचरण करते देख मनुष्य ने उड़नखटोले की कल्पना की और आज 'जेट', 'कामेट', 'बमवर्षक', 'भारवाहक' आदि न जाने कितने प्रकार के विमान हमारे सिर पर मँडराते रहते हैं। तीन सौ वर्ष पूर्व राम-रावण-युद्ध के प्रसंग में तुलसीदास ने युद्ध की भीषणता दिखाने के लिए कल्पना की कि :—

> 'नभ ते बरसहिं बिपुल अंगारा,
> महि ते प्रगट होइ जलधारा।'

और द्वितीय महासमर ने उक्त कल्पना उस समय प्रत्यक्ष कर दिखाई जब 'हिरोशिमा' और 'नागासाकी' पर अणुबम ने गिरकर

जल को थल और थल को जल बनाते हुए भीषण उथल-पुथल उपस्थित कर दी। यदि महाभारत में महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ने यह कल्पना ही की हो कि भारत-युद्ध में भीम द्वारा फेंके गए हाथी अब तक अन्तरिक्ष का चक्कर ही काट रहे हैं तो रूस द्वारा फेंके गए 'लाइका कुत्ते' द्वारा अन्तरिक्ष का चक्कर काटा जाना आज के युग की यथार्थ घटना है। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसी वस्तु की भी कल्पना की जा सकती है जो इस लोक में न भी हो। ऐसी स्थिति में सभी प्रकार की कल्पना सत्य नहीं भी हो सकती। परन्तु साहित्य के शासन में कल्पना सत्य का सर्वथा त्याग नहीं कर सकती और न सत्य पूर्णरूपेण कल्पना को ही छोड़ सकता है। डा० रांगेय राघव ने इसके बारे में लिखा है कि 'साहित्य का सत्य कल्पना को बिलकुल नहीं छोड़ देता, वह यथार्थ के आधार पर जितना ही दृढ़ होता है उतना ही वह गहराइयों तक पहुँचता है'।[1] साहित्य में यथार्थवाद जीवन का वह वास्तविक चित्रण है जो समाज के ज्वलन्त चित्र को प्रस्तुत कर देता है। साहित्यकार अपनी भाषा के माध्यम से कल्पनाजन्य सत्य को अपनी तीव्र अनुभूति के द्वारा व्यक्त करता है तो उससे साहित्यिक सत्य का सर्जन होता है। यथार्थवाद का एक मात्र लक्ष्य वस्तु जगत् की समस्त स्थितियों को प्रत्यक्ष रूप में रखते हुए समाज को उनकी ओर उन्मुख करना ही है। यथार्थ का यह भी अभिप्राय नहीं है कि वह वस्तु जगत् सम्बन्धी सत्यों का परिष्कृत रूप ही प्रस्तुत करे। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह सुगमतापूर्वक कहा जा सकता है कि यथार्थ और सत्य में पारिभाषिक और स्थानिक अन्तर होते हुए भी वास्तविक रूप में ऐसा कोई खास अन्तर नहीं है। कल्पना और यथार्थ दोनों एक दूसरे के आश्रित हैं। यथार्थ

१. डा० रांगेय राघव (आलोचना–१९५२)।

को सरस, मनोरञ्जक, हृदयग्राही और अत्यन्त प्रभावशाली बनाने के लिए कल्पना अत्यावश्यक है। उपन्यास ही एक ऐसा साहित्याङ्ग है जिसके अन्दर समसामयिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण कर सकना सम्भव हो सका है। यथार्थ के बारे में अपना मत प्रस्तुत करते हुए डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'कविता यथार्थ की उपेक्षा कर सकती है, सङ्गीत यथार्थ को छोड़कर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है।' समाज का यथावत् निर्जीव चित्र उतार देना मात्र ही उपन्यास का उद्देश्य नहीं होता है बल्कि वह और भी कुछ समाज के सामने रखना चाहता है। समाज को आदर्शोन्मुख करने की ही भावना का अविरल स्रोत उसके मानस पटल पर बहता रहता है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों के अन्दर भी इस प्रकार की भावना अधिक जागरूक दिखलाई पड़ती है, क्योंकि वे वास्तविकता को पहचानने में समर्थ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में कथानकों को दृष्टि में रखते हुए कल्पना और यथार्थ का चित्रण निम्नलिखित स्थितियों में प्राप्त होता है :—

(१) कथावस्तु का चुनाव।
(२) पात्रों की भाषा।
(३) संवाद।
(४) वर्णन-प्रणाली।

उपन्यासों में केवल देश-काल एवं समाज का चित्रमात्र ही नहीं होता, बल्कि वर्तमान परिस्थितियों से लोहा लेने के लिए मानव को निरन्तर वह प्रेरित करता रहता है। अन्य उपन्यासों में तिथि और नामों के अतिरिक्त सब सत्य होता है और रचनाकार अपनी रचना को यथार्थ की ठोस भूमि पर ही करता है, कल्पना के शून्य धरातल पर नहीं। इसके विपरीत ऐतिहासिक उपन्यासकार देश-काल, तिथियों और नामों

को सत्य के आधार पर इतिहास से लेकर कल्पना से उसको सरस बनाते हुए यथार्थ के साथ ही कल्पना के पुट के साथ साहित्य को समाज में प्रेषित करता है। उपन्यास का अध्ययन कथानक के आधार पर करने के पूर्व हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का भी थोड़ा-बहुत अवलोकन कर लेना अप्रासङ्गिक न होगा। हिन्दी में सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का सूत्रपात श्री किशोरी लाल गोस्वामी ने 'तारा' लिखकर किया। अतः इसे ही हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की माला का प्रथम पुष्प कहा जा सकता है। इसमें केवल ऐतिहासिक पात्रों को लेकर गोस्वामी जी ने कल्पना की उड़ान भरने का प्रयास किया है। इस उपन्यास को देखकर कोई भी विज्ञ पाठक इसको केवल मन-बहलाव अथवा समय व्यतीत करने का साधन मात्र समझ सकता है। इसे साहित्यिक उपन्यास समझने की भूल तो कदापि नहीं कर सकता। इस प्रकार यदि देखा जाय तो इसमें केवल कल्पना ही प्रमुख और यथार्थ प्रायः पूर्णरूपेण शून्य है। हिन्दी गद्य साहित्य के द्वितीय उत्थान काल में सर्वप्रथम मौलिक और श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में श्री राम कृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' और श्री बृन्दावन लाल वर्मा ने पदार्पण किया। शिलीमुख जी ने 'अमृत और विष' नामक एक भारीभरकम उपन्यास प्रस्तुत किया था जिसमें मुगल-कालीन भोग-विलास और राजपूती शौर्य के साथ ही 'गारुड़ी' के रूप में अलौकिक कार्य करने वाला एक पात्र भी चित्रित किया गया था। श्री बृन्दावन लाल वर्मा ने अपना प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़कुण्डार' भी इसी समय लिखा। श्री शिलीमुख और वर्मा जी की कला में मुख्य अन्तर यही है कि जहाँ वर्मा जी ने स्वयं बुन्देलखण्ड में जन्म लेने के कारण वहाँ के पर्वतों, जङ्गलों, भरकों, टौरियों, नदियों आदि का प्रत्यक्ष दर्शन किया और शैशव काल से ही परम्परागत जनश्रुतियों को सुनते-सुनते उनका

यथार्थवादी अनुभव कर लिया वहीं शिलीमुख जी ने केवल इतिहास की पुस्तकें पढ़कर कल्पना के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यास प्रस्तुत कर दिया। इसलिए हम शिलीमुख जी के 'अमृत और विष' को काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं और बृन्दावन लाल जी वर्मा के 'गढ़कुण्डार' को तथ्यवादी ऐतिहासिक उपन्यास। इसके अनन्तर हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास-क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार के रूप में अनेक उपन्यासकार आते हैं जिनमें प्रमुख सर्वश्री बृन्दावन लाल वर्मा, भगवती चरण वर्मा, जयशङ्कर प्रसाद, राहुल सांकृत्यायन, गोविन्द वल्लभ पन्त, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, मिश्र बन्धु, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, प्रो० धर्मेन्द्र, बलदेव प्रसाद मिश्र, डा० रांगेय राघव और यशपाल हैं। कथानक के आधार पर उपर्युक्त उपन्यासकारों की प्रमुख रचनाओं को ध्यान में रखते हुए तथा कथानकों में कल्पना और यथार्थ के तारतम्य को स्पष्ट करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासकारों में इनमें से प्रत्येक का स्थान सुगमतापूर्वक निर्धारित किया जा सकता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में निम्नलिखित लेखकों के ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानकों पर कल्पना और यथार्थ की दृष्टि से विचार किया जायगा:—डा० बृन्दावन लाल वर्मा (झाँसी की रानी, मृगनयनी, गढ़कुण्डार, विराटा की पद्मिनी), डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा), भगवती चरण वर्मा (चित्रलेखा), राहुल सांकृत्यायन (सिंह सेनापति), गोविन्द वल्लभ पन्त (अमिताभ और नूरजहाँ), चतुरसेन शास्त्री (वैशाली की नगरवधू), डा० धर्मेन्द्र (तैमूर), डा० रांगेय राघव (मुर्दों का टीला), जयशङ्कर-प्रसाद (इरावती); प्रताप नारायण श्रीवास्तव (बेकसी का मजार), यशपाल (दिव्या)।

डा० बृन्दावन लाल वर्मा—

हिन्दी में उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में आपका

अनोखा स्थान है। आपने देशकाल के वर्णन और वस्तु-विन्यास की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासकारों के भीतर अपना अद्वितीय स्थान बना लिया है। कथानक की दृष्टि से एवं कल्पना तथा यथार्थ के स्थान को निरूपित करने के लिए इनके निम्नलिखित प्रमुख उपन्यासों पर विचार करना चाहिए—

(१) विराटा की पद्मिनी।
(२) गढ़ कुण्डार।
(३) मृगनयनी।
(४) झाँसी की रानी।

विराटा की पद्मिनी :—

इस उपन्यास का कथानक अंशतः ऐतिहासिक है। अनेक पात्र और घटनाएँ काल्पनिक अथवा प्रतीक रूप में हैं। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि अनेक कालों की सच्ची घटनाओं का एक ही समय में समावेश कर देने के कारण मैं एक संबन्ध की घटनाओं को दूसरे सम्बन्ध से अलग करके बतलाने में असमर्थ हूँ। अनेक काल की घटनाएँ एक ही में सूत्रबद्ध हो गई हैं। अतः प्रतीकात्मक पात्र सब काल्पनिक ही हैं। अनेक कालों की घटनाओं को एक साथ सङ्गठित कर देने के कारण उन्हें ऐतिहासिक नहीं माना जा सकता। लेखक के ही शब्दों में देवी सिंह, लोचन सिंह, जनार्दन शर्मा, अली-मर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक हैं परन्तु इतिहास सत्याश्रित है। विराटा की पद्मिनी की कथा, पुस्तक से न लेकर जनश्रुति से ली गई है। पद्मिनी के बलिदान की कथा झाँसी में प्रत्येक की जबान पर है। लेखक ने विराटा, रामनगर आदि के दस्तूर को सरकारी दफ्तरों में पढ़ा है। इससे यह स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि 'विराटा की पद्मिनी' में इतिहास नहीं है बल्कि

ऐतिहासिक वातावरण है। इसके प्रायः सभी पात्र कल्पित हैं और घटनाएँ भी कल्पनाप्रसूत हैं।

कथा मुगल साम्राज्य के पतन-काल की हैं। उस समय किस प्रकार अनेक राजे और नवाब स्वतन्त्र होकर अपना आधिपत्य-विस्तार करने के लिए आपस में लड़ रहे थे और मुगल सम्राट् को सहायता देकर राज्य विस्तार की कामना कर रहे थे, किस प्रकार राजपूती मर्यादा के पालक राजा अपना प्राणोत्सर्ग कर रहे थे, किस प्रकार विलासी हिन्दू राजा अपने रनिवास को नई-नई रानियों से भरा-पूरा देखना चाहते थे और इसी के साथ मुसलमान नवाब हिन्दू बालिकाओं का अपहरण करने की घात में बैठे थे इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों का विस्तृत चित्रण हमें 'विराटा की पद्मिनी' में मिलता है।

इस उपन्यास में पात्र काल्पनिक हैं, उनका निर्वाह भी स्वच्छन्द रूप से हुआ है और वे जीवन्त भी हैं। इसकी मुख्य कथा या कथा का अन्त ऐतिहासिक होते हुए भी इतना सुन्दर और उत्कृष्ट है कि वह उत्कृष्ट कल्पना-सा ही प्रतीत होता है। वह सत्य होते हुए भी आदर्श है। वर्मा जी ने भावुकता के वशीभूत होकर मार्मिक स्थलों की परख की है तथा कल्पना शक्ति के माध्यम से आदर्श के साथ ही जीवन के स्थूल रूपों का अच्छा सम्मिश्रण किया है। यथार्थ और आदर्श दोनों के आग्रह के कारण ही 'कुंजर' का बलिदान हुआ है। यथार्थ इसलिए कि उन महान शक्तियों के बीच उसकी छोटी-सी शक्ति का पराजय निश्चित है और आदर्श इसलिए कि 'कुमुद' का बलिदान एक ऐतिहासिक शक्ति है और उसके साथ ही प्रेम की पूर्णता के लिए उसका आत्मत्याग दिखाना भी सुन्दर है।

गढ़ कुण्डार:—

इस उपन्यास के अधिकांश पात्र और अधिकांश घटनाएं पूर्णरूप से

ऐतिहासिक हैं। हुरमत सिंह, सोहनपाल, नागदत्त, विष्णुदत्त, धीर, पुण्यपाल, हेमवती आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। हुरमत सिंह का कुण्डार का राजा होना, सोहनपाल का अपने भाई से प्रताड़ित और प्रवंचित होकर कुण्डार राज्य से सहायता प्राप्त करने के लिए कुटुम्बसमेत कुण्डार आना, हुरमत सिंह का अपने पुत्र नागदत्त के साथ सोहनपाल की दुहिता का विवाह करना, बुन्देलों का इस विवाह को अमान्य करार देना, हुरमत सिंह का सोहनपाल की कन्या का जबरदस्ती अपहरण करने का प्रयास करना, बुन्देलों का खंगार राजा के पास नागदत्त और सोहनपाल की कन्या के विवाह का छल से भरा प्रस्ताव करना एवं विवाह के पूर्व कपटपूर्वक खंगारों को मद्यपान करा उनके उन्मत्तावस्था को प्राप्त होने पर उनका नाश करना, बुन्देलों का कुण्डार-गढ़ाधिपति होना एवं इस कार्य के लिए करेरा के पंवार सरदार पुण्यपाल का संयोग प्राप्त करना एवं उसके साथ हेमवती के विवाह आदि की जो कुछ भी घटनाएं इस उपन्यास में प्राप्त होती हैं वे सब पूर्णरूपेण शुद्ध ऐतिहासिक तथ्य हैं। कहीं-कहीं घटनाओं का अन्योन्याश्रित संबंध दिखाने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों और कल्पना में समन्वय कर लिया गया है। बुन्देल-खंड का वास्तविक इतिहास बहुत-कुछ तिमिराच्छादित है और जो कुछ भी ऐतिहासिक सत्यों का उद्घाटन हुआ है वह केवल मौखिक और किंवदन्तियों के आधार पर हुआ है। कहीं-कहीं पर तो ये किंवदन्तियां परस्पर विरोधी प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। अतः ऐसे कथानक को लिखते समय लेखक जिस तथ्य को तर्कसम्मत समझता है उसको ग्रहण कर लेता है। जहां पर कोई भी आधार नहीं प्राप्त होता वहां वह अपनी कल्पनाशक्ति के प्रभाव से आगे बढ़ता है। इस प्रकार अब तक की विवेचना से इस 'गढ़ कुण्डार' नामक उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में विवेचना हुई परन्तु इसके अतिरिक्त इसमें लेखक ने बहुत-

कुछ कल्पना भी की है। तारा और दिवाकर उसके कल्पनाप्रसूत पात्र हैं। इस प्रकार खंगारों के विनाश के संबंध में भी कई विरोधी किंवदन्तियां हैं। एक उनके नैतिक पतन को कारण मानता है तो दूसरा छल-नीति को। लेकिन इस उपन्यास में उपन्यासकार ने एक तीसरा मार्ग निकाल कर, जिसे मध्यमार्ग कहा जा सकता है, अपराध दोनों के माथे मढ़ दिया है। इस उपन्यास में ऐतिहासिकता का अधिक आग्रह प्रतीत होता है और यही कारण है कि कहीं-कहीं पर तो कथानक स्वाभाविकता को छोड़कर अस्वाभाविक हो गया है। ऐतिहासिकता के आग्रह को निभाने के निमित्त ही सहजेन्द्र को भी कथानक में बेकार ही घसीटना पड़ा है। अग्निदत्त की कल्पना लेखक ने कथानक को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से की है। यह पात्र बहुत ही सजीव होकर सामने आया है परन्तु इसकी कल्पना खंगारों के नाश में इसको सहायक बनाने के ही उद्देश्य से की गई है, इस कारण अग्निदत्त को अपना वास्तविक स्वरूप बहुत-कुछ बदलना पड़ा है। इस उपन्यास में ऐसा मालूम पड़ता है कि उपन्यासकार अपने एक पूर्व-नियोजित लक्ष्य को निश्चित कर चुका है और घटनान्त तक पहुंचने के लिए वह कोई भी सूरत काम में लाने के लिए सदैव तत्पर दिखाई देता है। इस उपन्यास में कल्पना को हटाकर अगर देखा जाय तो यह केवल इतना ही मालूम पड़ेगा कि हुरमत सिंह कुण्डार का राजा है और अपने लड़के नागदत्त का विवाह सोहनपाल की कन्या के साथ करना चाहता है। अन्त में उसका विनाश होता है और बुन्देले छल-बल के द्वारा कुण्डार पर अपना सार्वभौम आधिपत्य स्थापित करते हैं। इस उपन्यास की मुख्य कथा के साथ जितने भी ऐतिहासिक पात्र दृष्टिगोचर होते हैं उनमें न तो कोई सौन्दर्य है और न जीवन को सफल बनाने की महत्वाकांक्षा ही है। जहां तक स्वाभाविक प्रवृत्तियों का सवाल है उसका विकास कहीं-

कहीं पर उपन्यास में उसी रूप में दिखाई पड़ता है। यह रूप भी पूर्णरूपेण इसलिए नहीं निखर पाता क्योंकि इसको पूर्व-नियोजित कथा के साथ अग्रसर होना पड़ता है, जिससे इसे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को खो बैठना पड़ता है। इसी कारण लेखक को कल्पना के माध्यम से तारा और दिवाकर की सृष्टि करनी पड़ी है। इन दोनों पात्रों के स्वतन्त्र होने के कारण इनकी अपनी मनोवृत्तियों का सहजरूपेण जागरण और विकास हो सका है जिसको अपनी चरम परिणति में दिखाने का सफल प्रयास लेखक ने किया है और ये पात्र उच्च संदेश छोड़ गए हैं। अग्निदत्त भी कल्पनाजनित होने के कारण स्वतन्त्र और ऊंचे व्यक्तित्व का पात्र है। ऐतिहासिकता के मोह में आकर कल्पना को बहुत दूर रखकर वर्मा जी ने इस उपन्यास में अनेकानेक गढ़ियों के नाम गिनाने शुरू कर दिए हैं।

उपर्युक्त तथ्यों का गवेषणपूर्वक अध्ययन करने पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में वर्णित प्रायः सभी पात्र ऐतिहासिक हैं एवं जो कुछ भी घटनाएँ हैं वे पात्रों से सम्बन्धित हैं तथा ऐतिहासिक यथार्थ हैं। इसमें कल्पनांश का उतना आधिक्य नहीं है जितना कि ऐतिहासिक तथ्यों का यथारूप इसमें निरूपित होना। इसमें कल्पना और यथार्थ दोनों का सामंजस्य ठीक रूप से प्रस्तुत करने के लिए लेखक प्रयत्नशील था, लेकिन ऐतिहासिक आग्रह को तिलांजलि देने में वह पूर्णरूपेण असमर्थ रहा। यह वर्मा जी की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक कृति है।

मृगनयनी :—

इसमें उपन्यास के तत्वों के अतिरिक्त इतिहास की प्रधानता हो गई है। इतिहास का इतना बोझ उपन्यास या काव्य के लिए अत्यन्त भारी हो जाता है। इसकी सभी घटनाएँ इतिहास-सिद्ध और सम्मत

हैं। मानसिंह, मृगनयनी, सिकन्दर, महमूद बेगढ़ा, गयास, नसीर, विजयजंगम आदि नाम तो ऐतिहासिक हैं ही साथ ही उनके कृत्य भी ऐतिहासिक हैं। मानसिंह से गयास और सिकन्दर की लड़ाइयां ऐतिहासिक हैं और इनके परिणाम भी इतिहाससम्मत सत्य हैं। नसीरुद्दीन की पन्द्रह हजार बेगमें भी इतिहासप्रसिद्ध हैं। मृगनयनी का एक दरिद्र कुल की कन्या होना तथा अपने शौर्य और सौन्दर्य के लिए विख्यात होना इतिहासप्रसिद्ध है। नरवर किले का मानसिंह की सहायता से सिकन्दर के हाथ में जाना इतिहासप्रसिद्ध घटना है। अटल के मकान के स्थान पर किला बनवाने का वचन मृगनयनी ने विवाह से पहले मानसिंह से ले लिया था।

इस प्रकार इस उपन्यास की प्रायः सभी घटनाएँ और नाम ऐतिहासिक हैं परन्तु लेखक ने इन घटनाओं के सजाने का काम अपनी बुद्धि के कौशल से किया है। लेखक ने प्रचलित परम्पराओं में से उसके हृदयग्राही अंश को अपना लिया है। नटनियों के सम्बन्ध की किंवदन्तियों को भी लेखक ने अपने मनोनुकूल बना लिया है। लेखक के भीतर भारतीय आत्मसम्मान होने के कारण उसमें कहीं भी आत्म-समर्पण राजपूतों के द्वारा नहीं दिखलाया गया है। उसने नरवर के किले में ग्यारह महीने तक सिकन्दर की सेना के साथ युद्ध करने वाले राजपूतों का चित्र प्रस्तुत करते समय जब कि उन लोगों के पास भोजन नहीं था, आत्मसमर्पण न दिखाकर उनको लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त होते हुए दिखलाया है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो इस सम्पूर्ण उपन्यास में कल्पना की न्यूनता और इतिहास के सत्य का आधिक्य पाया जाता है।

झांसी की रानी :—

महारानी लक्ष्मीबाई का जीवनवृत्त इतिहास की ज्वलन्त और

मनोहारिणी घटना है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उन्होंने जो अतुलनीय शौर्य और साहस का प्रदर्शन किया है वह आज की घटना के समान ही मालूम होता है। अंग्रेजों से उनका युद्ध तथा स्वराज्य की रक्षा में आत्मोसर्ग कर देना इतिहासप्रसिद्ध और सत्य घटना है। सिपाही-विद्रोह, आंग्लों का अत्याचार आदि उस काल की यथार्थ घटनाएँ हैं। नवाब अली बहादुर और उसके नौकर पीरअली के काले कारनामे भी इतिहास के पन्नों में बहुत ही सुरक्षित और मोटे-मोटे काले अक्षरों में अंकित हैं। बाजीराव पेशवा द्वितीय और राव साहब सब ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। उपन्यास में वर्णित प्रत्येक घटना प्रायः सत्य है लेकिन ऐसा कहीं-कहीं पाया जाता है कि घटनाओं से सम्बन्धित पात्र काल्पनिक हैं। यह भी सत्य है कि हिन्दू राजाओं के निस्सन्तान हो जाने पर उनकी जागीरें अंग्रेजी राज्य में बिना हिचकिचाहट मिला ली जाती थीं। धर्म के अनुकूल गोद की प्रथा की उपेक्षा की गई। इसी कारण गंगाधर की मृत्यु के उपरान्त उनका गोद लिया हुआ पुत्र दामोदर लार्ड डलहौजी से मान्यता नहीं प्राप्त कर सका। इस उपन्यास में डलहौजी की राजनीतिक चाल, नीति और उसके भयंकर और विध्वंसकारी परिणाम का वर्णन किया गया है। इस प्रकार से अगर देखा जाय तो इस उपन्यास का संपूर्ण ढांचा शुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। यह यहां तक शुद्ध ऐतिहासिक है कि कहीं-कहीं कोरे ऐतिहासिक विवरण को पढ़ते-पढ़ते जी ऊबने लगता है। अगर कहीं इन विवरणों को कलात्मक ढंग से सजाया जाता तो शायद यह बहुत रोचक हो गया होता। यह दोष प्रायः वर्मा जी के सभी उपन्यासों में कुछ न कुछ अंशों में है। लिखने के आवेश में लेखक ने केवल इतिहासकार के रूप में कहीं-कहीं वर्णन करना शुरू कर दिया है जैसा कि अध्याय पांच में महारानी लक्ष्मीबाई के पूर्वजों का वर्णन किया गया है। इतिहास के

प्रति अत्यधिक निष्ठा होने के कारण कहीं-कहीं कोरी इतिवृत्तात्मकता आ गई है और इसमें उपन्यास के तत्व प्रायः दब से गये हैं। इसलिए कभी-कभी तो यह उपन्यास लक्ष्मीबाई के जीवनचरित्र के समान लगता है।

इतना सब होने पर भी लेखक ने अपनी अतुल कल्पनाशक्ति से इसका बड़ा ही मनोरम सामंजस्य किया है। झांसी की रानी के भीतर पुरुषोचित साहस के अतिरिक्त नारी-हृदय की कोमल एवं कलाप्रिय भावनाओं की सृष्टि लेखक की अद्भुत कल्पनाशक्ति का परिचायक है। सुन्दर और रघुनाथ सिंह, मोतीबाई और खुदाबक्स, जूही और ताँत्या के प्रेम की अत्यधिक सुन्दर कल्पना की गई है। लक्ष्मीबाई के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी घटनाएँ सत्य हैं। लेकिन जहां-जहां भी लक्ष्मीबाई के अन्तर का उद्घाटन करने के लिए लेखक ने उपकथाओं का सृजन किया है वहां-वहां उनकी शुद्ध कल्पनाशक्ति प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है। ये स्थूल रूप में ऐतिहासिक और सूक्ष्म रूप में काल्पनिक होती हैं। रानी का दासियों के प्रति प्रेम, मृदु व्यवहार और उनके कष्ट में अश्रुपात करना आदि सब कल्पना की उद्भावनाएँ हैं। इतिहास के प्रमुख तथ्यों को ही लेकर यदि यह उपन्यास लिखा गया होता तो यह अत्यधिक सफल हुआ होता लेकिन इसमें कल्पना का उतना ही महत्व है जितना कि यथार्थ का।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी:—

द्विवेदी जी ने आत्मकथा-पद्धति पर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नामक एक उपन्यास लिखा है। वैसे तो सम्पूर्ण कथानक कल्पना के सुदृढ़ आधार पर अवलम्बित है। लेकिन इसका विस्तृत विवेचन करने पर यह मालूम होगा कि कथानक सही अर्थों में ऐतिहासिक है और यथार्थ से अभिभूत है।

बाणभट्ट की आत्मकथा :—

इस उपन्यास की कथा वस्तु सम्राट हर्षवर्धन के काल से उद्धृत की गई है। इसके कुछ प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं जैसे बाणभट्ट, हर्षवर्धन, कृष्णवर्धन, राज्यश्री और जयन्तभट्ट, भर्वुशर्मा। इसमें वर्णित सभी घटनाएँ काल्पनिक हैं लेकिन जिन स्थानों पर घटनाएँ घटित हुई वे ऐतिहासिक हैं। कथानक कल्पना प्रधान होने पर भी यह युगानुकूल और समाज के अनुरूप ही है। उपन्यास के पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि उसमें वर्णित स्थान, घटना एवं त्यौहारों का जिस प्रकार चित्रण किया गया है वह युगीन साहित्य के अध्ययन का ही परिणाम मालूम होता है। इसके ऐतिहासिक पात्रों के जीवन में घटित घटनाओं का उल्लेख इतिहास में कहीं भी नहीं है। लेकिन उपन्यासकार ने अपनी प्रतिभा के बल पर और कल्पना के सहारे पात्रों के उपयुक्त घटनाओं का सर्जन कर लिया है। आत्मकथा में यथार्थता का रङ्ग चढ़ाने के लिए लेखक ने 'बाण' की ही रचना शैली अपनाई है परन्तु यह जानते हुए भी बाणभट्ट की लम्बे-लम्बे समासों वाली शैली युग के अनुकूल नहीं है। लेखक ने उसमें सुन्दर और प्रभावशाली संशोधन कर लिया है। यदि बाणभट्ट की आत्मकथा का संस्कृत अनुवाद हो जाय तो उसके पाठक को सहज ही यह भ्रम हो सकता है कि यह आचार्य द्विवेदी जी की रचना न होकर हर्षचरित का ही कोई छूटा हुआ अंश है।

इस उपन्यास के प्रायः सभी पात्रों में स्वाभाविकता और यथार्थ का रूप दृष्टिगत होता है। 'बाण' के भीतर प्राचीन महाकवियों के समान जीवन को आनन्द की वस्तु मानते हुए मस्तानेपन, अल्हड़पन आदि का दिग्दर्शन होता है। इसमें कोई भी चरित्र अनावश्यक रूप से सम्मिलित नहीं किया गया है। इसके सभी पात्र कोई न कोई देश-काल, जीवन एवं समाज या राष्ट्र का रहस्य खोलकर पाठकों के सामने

प्रस्तुत करते हुए कथानक को आगे बढ़ाते हुए परिलक्षित होते हैं। पात्रों को सजाने तथा उनको क्रमानुसार कथानक में अवतरित करने में बुद्धि कौशल का प्रयोग किया गया है। इस उपन्यास के पात्रों में वर्ग-गत और व्यक्ति गत दोनों विशेषताएँ हैं। आत्मकथा पद्धति पर उपन्यास लिखने का नवीन प्रयोग डा० द्विवेदी जी ने किया है, और इस प्रयोग को सफल बनाने में उनको स्वयं बाणभट्ट बनना पड़ा है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण उपन्यास कल्पना और यथार्थ दोनों का यथानुकूल सम्मिश्रण के फलस्वरूप आदर्श के रूप में सामने आता है। जान पड़ता है कि डा० द्विवेदी के ही उक्त सफल प्रयत्न को देखकर राहुल सांकृत्यायन जी ने उसी शैली पर 'सिंह सेनापति' की रचना की।

श्री भगवती चरण वर्मा :—

वर्मा जी ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखते हुए भी केवल सामाजिक तत्वों को रोचक ढङ्ग से प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्नशील होकर अपने उपन्यास में केवल ऐतिहासिक ढाँचे के नामों को ही गिनाकर और शेष खानापूर्ति रोमांस के आधार पर कर सन्तोष कर लिया है। 'चित्रलेखा' के अध्ययन से उक्त तथ्य स्पष्टतः उभर आता है।

चित्रलेखा :—

इस उपन्यास की रचना केवल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर हुई है। इसकी कथावस्तु एवं शैली दोनों उपन्यास के तत्वों के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध जोड़ने में असमर्थ है। यह केवल समस्या के निराकरणार्थ भिन्न-भिन्न तर्कों के आधार पर आधारित उपन्यास है। इसका सम्पूर्ण कथानक पाप और पुण्य की शाश्वत समस्या को लेकर चला है। इस उपन्यास के कथानक में से यदि ऐतिहासिक वातावरण निकाल भी दिया जाय और किसी दूसरे काल के वातावरण को इसमें प्रविष्ट करा

दिया जाय तो भी इस उपन्यास के सौन्दर्य और उद्देश्य में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। इस उपन्यास में मौर्यकाल के अनुरूप ही सामन्ती भोग-विलास, तपस्वी लोगों का आधिक्य, समाज में नर्तकियों के स्थान आदि का चित्रण है। चन्द्रगुप्त के दरबार में जिस प्रकार का विवाद चाणक्य और कुमारगिरि में होता है वह कभी सम्भव नहीं है। इसलिए उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि यह सच्चा ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है। साथ ही इस उपन्यास में कहीं-कहीं काल विरुद्ध वर्णन का दोष भी आ गया है जैसे कुमारगिरि का नाम। यह नामकरण करने में लेखक इसलिए चूक गया है, क्योंकि उसके समकालीन संन्यासी सम्प्रदाय के दस भेद होते हैं और इसीलिए ऐसे साधु दशनामी संन्यासी कहलाते हैं। दशनामी संन्यासियों की उपाधि गिरि, पुरि, भारती, पर्वत, अरण्य आदि होती है। दशनामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक आद्य शङ्कराचार्य थे, जो मौर्य काल के बहुत बाद उत्पन्न हुए। अतः मौर्यकालीन किसी योगी की उपाधि गिरि रखना इतिहासविरुद्ध है।

'चित्रलेखा' में समस्या का समावेश हो जाने के कारण चरित्रों का विश्लेषण और विकास नहीं हो पाया है। समस्या के बन्धनों से बँधी होने पर भी चित्रलेखा के सम्वाद बड़े ही सजीव एवं आकर्षक हैं। लेखक की कल्पना के कारण कहीं-कहीं पर चित्रलेखा की भाषा प्राञ्जल तथा दार्शनिक विचारों से अत्यधिक बोझिल हो गई है। चित्र-विधान और दृश्य-विधान बड़े ही स्वाभाविक और जीवन्त ढङ्ग से किया गया है। चित्रलेखा ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित कल्पना-प्रसूत ऐतिहासिक रोमांस है।

श्री राहुल सांकृत्यायन:—

ऐतिहासिक उपन्यासकारों की श्रेणी में राहुलजी का भी नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। उनकी भाषा सजीव और उनका

ऐतिहासिक ज्ञान अपार है। परन्तु महापण्डित राहुल जी की इसे दुर्बलता ही कहेंगे कि साहित्य-साधना के सिलसिले में उन्होंने उसी प्रकार राजनीति का त्याग नहीं कर दिया जिस प्रकार उनके समकालीन श्रीवृन्दावनलाल वर्मा और श्रीभगवतीचरण वर्मा ने वकालत का चोंगा उतार कर रख दिया और शुद्ध साहित्य-साधना में तल्लीन हो गये। राहुल जी की राजनीतिक निष्ठा भी एक ऐसे राजनैतिक दल के साथ है, जो मनुष्य की चेतनता-जन्य विशेषता की पूर्ण उपेक्षा कर उसे जड़वत अपने बनाए हुये चौखटे में जड़ देने का दुराग्रह रखने के लिये विख्यात है। यही कारण है कि राहुल जी ने अनावश्यक रूप से मार्क्सवाद को उसी प्रकार साहित्यिक लबादे से ढकने का प्रयत्न किया है जिस प्रकार 'मैक्सिम गोर्की' ने अपने कला द्वारा किया था। राहुल जी और गोर्की दोनों ही की सफलता उनकी कृति में उतनी नहीं है जितनी उनकी प्रतिभा में है। यही कारण है कि इनके उपन्यासों में कथानक प्राचीन काल के होते हुए भी उसके भीतर मार्क्सवाद की आधुनिक समस्या का समावेश हो गया है। इन्होंने तीन ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं:—

१—सिंह सेनापति।

२—मधुर मिलन।

३—जय-यौधेय।

सिंह सेनापति इनका अधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

सिंह सेनापतिः—

प्रस्तुत उपन्यास, साहित्य में साम्प्रदायिक और राजनीतिक आग्रह का नमूना है। इस संपूर्ण उपन्यास में लेखक का व्यक्तिगत जीवन किसी न किसी प्रकार उपन्यास के पात्रों में आ ही जाता है। सिंह सेनापति में

राहुल जी के गतिशील और घुमक्कड़ जीवन की छाया आ गई है। पर छाया कुछ मात्रा का अतिक्रमण कर गई है। पाठक रुक कर राहुल जी को उसमें ढूँढने को विवश हो जाता है। उपन्यास पर यथार्थवादी रङ्ग चढ़ाने के लिये लेखक ने यह कल्पना की कि उसे ईंटों पर लिखी सिंह सेनापति की जीवन-कथा मिल गई, जिसका उसने हिन्दी रूपान्तर कर दिया। फलतः इसका कथानक बौद्धकाल का है। इसमें आये हुये पात्रों के नाम बुद्ध, महावीर, बिम्बसार, अजातशत्रु आदि पूर्ण ऐतिहासिक हैं। 'सिंह' भी ऐतिहासिक पात्र है। यह वैशाली का सेनापति है, जो कि पहले जैन-धर्मावलम्बी था, लेकिन बाद में बौद्धधर्म में दीक्षित हो गया। इसका कथानक बहुत ठोस नहीं मालूम पड़ता। वास्तविक रूप से यदि देखा जाय तो इसमें कथा अत्यल्प है, जिसे लेखक ने विश्राम दे देकर बहुत देर बाद मंजिल तक पहुँचाया है। इसीलिये बीच-बीच में अनावश्यक प्रसङ्ग और विनोद के लम्बे-लम्बे आख्यान आ गए हैं। उद्देश्य की सिद्धि के लिये ऐसी-ऐसी घटनाओं का इसमें सन्निवेश किया गया है, जो निष्पक्ष विवेचन करने पर पूर्णरूपेण अनावश्यक और अप्रासंगिक मालूम पड़ती है। इसका कथानक भी पूर्णरूपेण सुसङ्गठित नहीं है। उप-कथाओं का मूलकथा से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं दृष्टिगोचर होता है। इसमें कौतूहल नाम की वस्तु नाममात्र के लिये भी नहीं है और इसका ठीक रूप से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण न होने के कारण आगे आनेवाली कथा एवं घटना का आभास वहाँ तक पहुँचने के बहुत पहले ही मिल जाता है। इसमें एक विशेषता यह है कि लेखक जिस पात्र के प्रति सहृदय है वह पात्र जीवन में हार खाना जैसे जानता ही नहीं है।

इस उपन्यास के पात्रों में स्वाभाविकता और प्राणवत्ता भी है। सिंह सेनापति का अपना निराला और स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। वह युग-

विशेष का प्रतिनिधि स्वरूप लिच्छिवी सेनापति है। इस उपन्यास के सभी पात्र उच्चश्रेणी के हैं। ये जो सोचते हैं उसे तत्त्वण कर डालते हैं। इसका कारण यह है कि लेखक ने गणराज्यों को इस प्रकार की सद्वृत्तियों पर आधारित माना है, जहाँ मानवता के विरुद्ध किसी को भी आवाज उठाने का साहस नहीं है। ऐतिहासिक पात्रों के साथ खेलवाड़ न कर सकने के कारण लेखक ने जो कुछ अन्य पात्रों का सर्जन किया है, उनको 'सिंह' और 'रोहिणी' के मार्ग में खड़ाकर अगर उनकी परीक्षा लेता तो उपन्यास में जान आ जाती। परन्तु एक विशेष वाद के प्रचार की इच्छा के कारण वह चूक गया है। अन्तर्द्वन्द्व के अभाव के कारण ही लेखक पात्रों की मनःस्थिति की व्याख्या करने में असमर्थ हो गया। इसके अध्ययन से यह भान होता है कि लेखक का मूल उद्देश्य केवल उस काल के वातावरण, संस्कृति, सभ्यता का चित्र खींचकर वर्तमान कम्युनिज्म के साथ सामंजस्य स्थापित करना ही है। लेखक ने स्वयं विषय-प्रवेश में लिख दिया है कि 'मैं आज की संकीर्ण (?) हिन्दू मनोवृत्ति की परवाह नहीं करता।' यह अनावश्यक वक्तव्य ही बता रहा है कि इसके मूल में एक बौद्धधर्मावलम्बी का दूसरे धर्मावलम्बियों पर साम्प्रदायिक आक्रमण है। लेखक ने जिस प्रकार अपनी राजनीतिक आस्था का आरोप मूलकथा में किया है उससे प्रतीत होता है कि लेखक ऐतिहासिक-कंकाल के भीतर साम्यवाद की साँस भरना चाहता है। यदि गणराज्यों की सामाजिक-व्यवस्था मार्क्सवादी व्यवस्था से किसी हद तक मिलती हुई हो तो भी दोनों को एक ही कह देना कदापि उचित नहीं है। क्योंकि मार्क्सवाद की प्रतिष्ठा अभी नूतन है। एक विदेशी आधुनिक राजनीतिक वाद को प्राचीन भारतीय सामाजिक-व्यवस्था बता देना लेखक के अतिशय आग्रह का द्योतक जान पड़ता है। यही बात इनके प्रायः सभी

उपन्यासों में पाई जाती है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन और आचार्य डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी में ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में यही मौलिक अन्तर है। आचार्य डॉ० हजारी प्रसाद ने 'बाणभट्ट की आत्म-कथा' में शुद्ध साहित्य पर दृष्टि रखते हुए जिस आग्रह-शून्यता का परिचय दिया है, यदि राहुलजी भी वैसा ही करते तो सम्भवतः उनका उपन्यास सार्वकालिक साहित्य बन जाता। कहने का अर्थ यह है कि आग्रहशून्य होकर यदि लेखक ने मानवता की प्रतिष्ठा का प्रयास किया होता तो यह प्रयास स्तुत्य होता। परन्तु ऐसा न होने के कारण हम यह कहने के लिये विवश हैं कि इस उपन्यास में कल्पना और यथार्थ के अंश के साथ ही लेखक की आग्रहपरता का भी समावेश है।

पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्तः—

पन्तजी की प्रतिभा उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में निखर आई है। वे जितने इतिहास के प्रति सच्चे हैं उतने ही साहित्य के प्रति जागरूक हैं। यही कारण है कि उनके दो उपन्यास 'अमिताभ' और 'नूरजहाँ' बहुत ही श्रेष्ठ ऐतिहासिक कलाकृति माने जाते हैं।

अमिताभ और नूरजहाँः—

इन दोनों उपन्यासों के कथानक अति ललित और सुपरिचित हैं। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है पन्तजी ने इतिहास के प्रति अत्यधिक सच्चे होने के कारण अपनी ओर से उन उपन्यासों में कल्पना बहुत कम की है। कल्पना बिना साहित्य में रस की निष्पत्ति नहीं होती। इसलिए कल्पना-विहीन साहित्य रोचक नहीं होता। इस आधार पर ये उपन्यास, उपन्यास न मालूम होकर जीवन-चरित्र से मालूम पड़ते हैं। इसके

पात्र तो शुद्ध ऐतिहासिक हैं, लेकिन लेखक ने अपने बुद्धि, बल एवं मनोविश्लेषण के द्वारा इनके भीतर एक नवीन आकर्षण ला दिया है। लेखक ने इसके भीतर कथानक के युग की कोई नूतन वस्तु को प्रतिपादित करने में अपने को असमर्थ पाया है। केवल यथार्थ के ही निरूपण में अपने साहित्य का सर्जन किया है। गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों को जो चिरपरिचित है, पन्तजी ने अपने 'अमिताभ' उपन्यास का आधार बनाया है। पन्तजी के 'नूरजहाँ' उपन्यास के प्रकाशित होने के प्रायः पचास वर्ष पूर्व काशी के श्रीगङ्गाप्रसाद गुप्त ने भी 'नूरजहाँ' उपन्यास प्रकाशित किया था। गुप्तजी और पन्तजी के 'नूरजहाँ' उपन्यासों के कथानक में कोई अन्तर नहीं है। जो कुछ भेद है वह केवल तीन बातों में है। (१) भाषा-शैली, (२) वर्णन-शैली और (३) कलेवर। गुप्तजी की 'नूरजहाँ' की भाषा श्री रतननाथ दर के 'फिसाना-आज़ाद' की शैली पर चलती है तो पन्तजी की 'नूरजहाँ' में हिन्दी की शुद्ध साहित्यिक शैली का आनन्द मिलता है। गुप्तजी की 'नूरजहाँ' में केवल कथा ही कथा है, परन्तु पन्तजी की 'नूरजहाँ' में प्राकृतिक वर्णनों की प्रचुरता है। यही कारण है कि पन्तजी की 'नूरजहाँ' का कलेवर गुप्तजी की 'नूरजहाँ' के कलेवर से कहीं अधिक बड़ा है।

श्री चतुरसेन शास्त्री :—

शास्त्रीजी ने 'वैशाली की नगरवधू' नामक ऐतिहासिक उपन्यास सन् १९४८ में लिखा। इसका सम्बन्ध भारत के प्राचीन इतिहास से है। इसमें ६०० ई० पू० से लेकर ५०० ई० पू० तक के समय में गान्धार से लेकर मगध और अंग तकके राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्थितियों से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री उसी प्रकार से एकत्र कर दी गई है, जैसे कबाड़ी अपनी दूकान में फिरिहरी से लेकर

मोटर का इञ्जन तक रख देता है। मूलकथा में गति लाने के लिए अनेकानेक प्रासंगिक कथाओं को बीच में समाविष्ट किया गया है। इस उपन्यास का सारा महत्व केवल उसके बृहद् आकार में है। यही कारण है कि इसकी वर्णन-शैली बहुत ही अनाकर्षक हो गई है।

वैशाली की नगरवधूः—

इसमें लेखक ने बौद्धकालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन बहुत ही विस्तृत रूप से किया है। परन्तु इसके आधार पर यदि हम ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करें तो केवल निराशा ही हाथ लगेगी। लेकिन जहाँ तक ऐतिहासिक वातावरण के रसास्वादन का प्रश्न है पाठक को परितृप्ति प्राप्त हो सकती है। ऐतिहासिक उपन्यासों में जो तथ्य होते हैं वे पूर्णरूपेण शुद्ध ऐतिहासिक ही हों ऐसी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि उनमें कल्पना का सामञ्जस्य होने के कारण विकृति सम्भव है। इसी डर से लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि इस उपन्यास की कथावस्तु का मूलाधार बौद्ध-ग्रन्थों में उल्लिखित वैशाली की प्रमुख गणिका अम्बपाली है, जो कि उपन्यास में ऐतिहासिक-रस की निष्पत्ति में सहायक है। इसमें गण-राज्यों के उस प्रचलित नियम का चित्रण किया गया है, जिसके द्वारा गण की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को उसकी इच्छा के प्रतिकूल भी नगरवधू बनाया जाता था। यह चित्रण बहुत ही अच्छे ढंग से किया गया है। लेखक ने इन्हीं दो मूल ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर नगरवधू अम्ब-पाली को केन्द्र मानकर कथा का सर्जन किया है। इस उपन्यास की कहानी में कितना अंश लेखक का कल्पना-प्रसूत है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। 'जातक' और 'दिव्यावदान' आदि बौद्ध ग्रन्थों से, 'कथासरित्सागर' नामक गुणाढ्य के बृहत् कथा संग्रह से, राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह सेनापति' जैसे उपन्यासों से और शुद्ध इतिहास से

पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस पृष्ठों के उद्धरण ज्यों के त्यों किसी तारतम्य या सजावट के बिना ही इस विशालकाय ग्रन्थ में ठूँस दिए गए हैं। इसलिए इसमें आए हुए प्रमुख पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति है। इस कथानक" का सम्पूर्ण उत्तरार्ध अम्बपाली से समाप्त होता है। उत्तरार्ध में पूर्वार्ध की अपेक्षा अधिक औपन्यासिकता आ सकी है। इस उपन्यास के अन्दर मूलकथा का स्थान बिलकुल गौण है। इस उपन्यास के द्वारा इस बात का अच्छी तरह आभास होता है कि इस काल में नगर कम और ग्राम अधिक थे। देश के अन्दर मुख्यतः दो प्रकार की शासन-पद्धतियों का प्रचलन था। कुछ भागों में राजतन्त्रात्मक शासनप्रणाली थी, जैसे कोशल के प्रसेनजित और मगध के सम्राट बिम्बसार। दूसरे गणराज्य थे जिनमें प्रमुख वैशाली था। इस काल में क्षत्रियों का दर्जा विप्रों से अधिक था। इसी से उनमें परस्पर निरन्तर स्पर्धा चलती रही। उस काल के आर्यों ने वर्णसङ्कर पुत्र पैदा करने की अनुमति दे दी थीं। लेकिन उत्तराधिकार का अधिकार नहीं दिया था। उपन्यासकार ने गणराज्यों का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। इस उपन्यास की कथा का सम्बन्ध अनेक राज्यों एवं वर्गों से होने के कारण तत्कालीन सभी सामाजिक एवं धार्मिक रूपरेखायें सिमिट कर आ गई हैं।

ऐतिहासिक तथ्यों में पाई जाने वाली शुष्कता लेखक द्वारा संगृहीत कुछ चमत्कारी घटनाओं से दूर हो गई है। ऐसे प्रसंग ऐयारी घटनाओं के समान मालूम होते हैं। इस उपन्यास का निर्माण सोद्देश्य जान पड़ता है। इसमें कल्पना और यथार्थ दोनों का ठीक सामंजस्य होने पर भी शास्त्रीजी ने कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का अतिरंजनात्मक वर्णन किया है। इस उपन्यास में तत्कालीन परिस्थितियों का जो कुछ चित्र प्रस्तुत किया गया है वह पूर्णरूपेण ऐतिहासिक यथार्थ है। परन्तु कालगत वर्णनों में शास्त्रीजी कभी-कभी आधुनिकता की ओर भी

प्रवृत्त हो गए हैं। कल्पना द्वारा यदि युद्ध का प्राचीन ढङ्ग से वर्णन किया जाता तो बड़ा ही सुन्दर होता।

बाबू जयशङ्कर प्रसाद :—

प्रसाद जी को अपने प्राचीन भारतीय इतिहास से बड़ा प्रेम था। गम्भीर अध्ययन और चिन्तन के उपरान्त इन्होंने ऐसे-ऐसे नूतन ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण किया जो बड़े-बड़े ऐतिहासिक लेखकों से नहीं हो सका। प्रसाद जी यह नूतन अन्वेषित ऐतिहासिक तथ्यों का प्रयोग केवल अपने नाटकों में ही करते रहे। यही कारण है कि इनके ऐतिहासिक नाटक बड़े ही भावोत्पादक हैं। लेकिन अपने जीवन के अन्तिम समय में इनका ध्यान ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की ओर गया और इन्होंने 'इरावती' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखना आरम्भ किया। परन्तु असमय ही काल की काली छाया ने उसे पूरा होने नहीं दिया और यह उपन्यास अधूरा का अधूरा ही रह गया। इसकी कथा-वस्तु शुङ्गकाल से ली गई है। इस उपन्यास की शैली में प्रसाद की अपनी एक नवीन शैली दिखाई देती है, जिसमें सरसता और रोचकता की अविरल धारा अबाध गति से बहती हुई दृष्टिगोचर होती है। श्री श्रीनारायण राय तो इसकी वर्णन-प्रणाली की अद्भुतता एवं रमणीयता को 'करुणा' और 'शशाङ्क' से भी आगे मानते हैं। इस पर हम आगे चलकर 'हिन्दी के तीन अधूरे ऐतिहासिक उपन्यास' शीर्षक में विस्तृत रूप से विचार करेंगे।

श्री यशपाल :—

हिन्दी-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों का अत्यन्त अभाव है। जो कुछ भी उपन्यास लिखे गए हैं उनमें केवल ऐतिहासिक सत्य को ही निरूपित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार के उपन्यास अन्य

भाषा साहित्य में उपन्यासों की कोटि में नहीं रखे जा सकते। यशपाल ने 'दिव्या' लिखकर उस कमी को पूरा करने का प्रयास किया और इस उपन्यास को देखकर हिन्दी को यह आशा हुई कि निकट भविष्य में बङ्गलासाहित्य के श्री राखालदास बन्द्योपाध्याय के समान हिन्दी में भी उपन्यासकार प्राप्त होगा। यदि क्रान्तिकारी यशपाल ने कलाकार यशपाल को दबोच न लिया होता तो हिन्दीवालों की उक्त आशा को साकार होते देर न लगता।

दिव्या:—

इस उपन्यास का कथानक बौद्धकालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के गवेषणात्मक अध्ययन के ऊपर आधारित है। यशपाल इतिहास को अन्धविश्वास की वस्तु नहीं मानते। इनके मतानुसार इतिहास गवेषणा की वस्तु है। इस उपन्यास में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि अतीत की कल्पना स्वर्णिम कल्पना की वस्तु नहीं है। उसमें भी आज के समान व्यक्तियों का निवास था। उस काल में भी मानवसुलभ व्यापार और अपने सुख के लिये दूसरे का बहुत बड़ा अपकार भी किया जाता था, जैसा कि आज भी होता आ रहा है। इसी कारण 'दिव्या' में तत्कालीन समाज के रूप को प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी के कुछ श्रेष्ठ उपन्यासकारों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि वे ऐतिहासिक उपन्यास-सर्जन करते समय पात्रों और घटनाओं को तो इतिहास-सम्मत दृष्टि से लेते हैं, परन्तु कथानक के उत्तरोत्तर विकास में कल्पना का इतना आधिक्य कर देते हैं कि तत्कालीन स्वरूप विकृत होकर उपहासास्पद हो जाता है। इस प्रकार की आपत्ति 'दिव्या' के बारे में नहीं उठायी जा सकती। जहाँ तक इसमें ऐतिहासिकता का प्रश्न है, इसके कथानक और पात्र सभी पूर्णतः कल्पित है। इसके कथानक का सर्जन किसी ऐतिहासिक घटना के आधार

पर नहीं किया गया है, बल्कि उपन्यासकार अपनी कल्पनाशक्ति के माध्यम से कथानक को उत्पन्न किया है, किन्तु जिस काल के कथानक का कल्पना के द्वारा सर्जन किया है उसके यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण तथा देश-काल आदि के चित्रण में उपन्यासकार ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

ऐतिहासिक उपन्यास दो कोटियों में रखे जा सकते हैं:—शुद्ध ऐतिहासिक तथा इतिहासाश्रित। पहली कोटि में घटनाओं, पात्रों और परिस्थितियों का चित्रण रहता है, जब कि दूसरी में इनका ऐसा व्यापक प्रयोग नहीं रहता, केवल देश-काल का चित्रणमात्र रहता है। यहाँ पर इतिहास केवल पूर्वपीठिका के रूप में काम करता है। यहाँ पर शुद्ध इतिहास के आधार पर सफल उपन्यासों की रचना हिन्दी में नहीं हो सकी है। 'दिव्या' के बारे में यशपाल ने स्वयं कहा है कि 'दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पनामात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। लेखक ने कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है।' इस उपन्यास के मूल में शोषण की वृत्ति को रख कर लेखक ने सारी ऐतिहासिक परिस्थितियों की विवेचना की है। उपन्यासकार ने कथानक का संगठन एवं देश-काल का वर्णन इस प्रकार से किया है कि औपन्यासिकता में कहीं भी दोष आने नहीं पाया है। इसमें कोई सन्देह नहीं की यशपाल की 'दिव्या' हिन्दी-साहित्य के सफल ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में विशिष्ट स्थान रखती है। अगर लेखक अपनी दुर्बलता से बच पाता तो यह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास होता। डा० रांगेय राघव का मत है कि 'आजकल हिन्दी में बहुत ऐसे उपन्यास निकल रहे हैं, जिनमें अद्भुत बातें साबित कर दी गई हैं, ऐसे अनेक उदाहरण हैं। खेद है कि

आपको यहाँ दास, दार्शनिकों सी बातें करता मिलेगा। न वह वैज्ञानिक भौतिकवाद मानता है न द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक व्याख्या। मैं समझता हूँ इतिहास को इतिहास की दृष्टि से देखना अधिक श्रेयस्कर है; न कि अपने आपको पात्र बनाकर किये-कराये पर पानी फेर देना।[1] यह दोष 'दिव्या' में दिखाई देता है। इसमें उपन्यासकर ने इतिहास को अपनी एक विशेष दृष्टि से देखा है, लेकिन प्रस्तुत करने का ढंग कलात्मक है, जिसके कारण पाठकों को ऐतिहासिक यथार्थ का पूर्ण रस प्राप्त होता है। भाषा और वर्तनी की गलतियाँ इसमें बहुत हैं, परन्तु वे क्षम्य इसलिये हैं क्योंकि अधिकांश नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार शुद्ध भाषा के पक्षपाती कभी नहीं रहे।

डा० रांगेय राघव—

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में इनका अपना विशिष्ट स्थान है। इन्होंने देशकाल के अन्दर पूर्णरूपेण जागरूक होकर दो प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। (१) मुर्दों का टीला। (२) देवकी का बेटा। प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में इनका मुर्दों का टीला अधिक प्रसिद्ध है।

मुर्दों का टीला:—

इसमें उपन्यासकार ने गणतन्त्रात्मक राज्यविधान की समस्याओं को उठाया है और वर्तमान प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था का समर्थन प्राचीनता के वातावरण में रखकर किया है। यही कार्य महापण्डित राहुल ने भी किया है। ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी कल्पना का रंग वहीं तक चढ़ा सकता है जहाँ तक कि देशकाल की मर्यादा नष्ट न

१. डा० रांगेय राघव—'मुर्दों का टीला' (भूमिका)।

हो। शुद्ध साहित्य में किसी वाद के लिए स्थान नहीं होता। डाक्टर रांगेय राघव ने कहा है कि 'कला मनुष्य की सामूहिक क्रियाओं की वह अनुभूति है, जो अपने सुख-दुःख अथवा श्रम को हलका करने के लिए बनाई गई थी। प्रत्येक युग में उसकी अनुभूति का स्वर बदलता है और कला भी बदलती रही है'।[1] ऐतिहासिक कथा-साहित्य के लिये ऐसे काल की कथा ली जा सकती है, जिसके लिये प्रामाणिक समकालीन लिखित सामग्री हो, उपन्यासकार को हमेशा यह ध्यान में रखना पड़ता है कि उसकी एक-एक पंक्ति को बड़ा ही निष्ठुर मर्मज्ञ-समूह तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा है और उसकी थोड़ी सी भी गलती सह नहीं सकता। ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक पात्रों के साथ खेलवाड़ करने का या रूप विकृत करने का कोई अधिकार नहीं है। उपन्यासकार ऐतिहासिक अनौचित्य से तभी बच सकता है जब कि उसका ऐतिहासिक ज्ञान पूर्ण हो। उपर्युक्त कसौटियों पर कसने पर यह कहा जा सकता है कि 'मुर्दों का टीला' भले ही ऐतिहासिक पीठिका पर आधारित क्यों न हो, लेकिन कल्पनाजनित होने के कारण इसमें कल्पना का अंश अधिक और सत्य का अंश कुछ कम मालूम देता है।

श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव:—

श्री श्रीवास्तव जी ही सर्वप्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने गावों और शहरों को छोड़ कर सिविल लाइन के बंगलों, सिनेमाघरों, पार्टियों आदि स्थानों में होने वाले जीवन के घात और प्रतिघात का यथार्थ और प्रभावोत्पादक चित्र खींचा है। श्री श्रीवास्तव जी वस्तुतः इतिहास के विद्वान नहीं हैं। इतिहास इनके लिये एक आधार मात्र है, जिसके ऊपर

१. डा० रांगेय राघव—आलोचना—(अप्रैल १९५२)।

ये अपनी साहित्यिक-प्रतिभा का भवन निर्मित करते हैं। हिन्दी में कोई भी ऐसा उपन्यासकार नहीं हुआ जो इतिहास को उपन्यास बना दे। थोड़ा बहुत श्री सत्यकेतु विद्यालंकार का 'आचार्य चाणक्य' इसी तरह का प्रयास मालूम पड़ता है। श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव का 'बेकसी का मजार' सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम एवं जन-क्रान्ति का सजीव चित्र है।

बेकसी का मजार :—

इसमें लेखक अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम की प्रायः प्रत्येक घटना तथा घटनास्थल का पूर्ण चित्र पाठकों तक पहुँचाने में सफल हुआ है। इस उपन्यास को पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि घटनाओं को श्रृङ्खलाबद्ध करने के लिए उपन्यासकार को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा है। इसका कारण यह है कि ऐतिहासिक वास्तविक घटनाओं को कलात्मक ढंग से औपन्यासिक प्रभाव के साथ उपस्थित करना कोई साधारण कार्य नहीं है। ऐतिहासिक उपन्यास में लेखक जब घटना की सत्यता की ओर झुकता है तो उपन्यास के कथाप्रवाह में गतिहीनता एवं शुष्कता आने लगती है। यह 'झाँसी की रानी' में देखा जा सकता है और यही चीज 'बेकसी का मजार' में भी प्राप्त होती है। कल्पना के कलेवर में सजी हुई अनेक घटनायें एवं पात्र प्रायः ऐतिहासिक हैं। इसमें लेखक ने कुछ विशेष चरित्रों पर अधिक बल देकर उपन्यास के कथानक को रोचक एवं प्रवाहपूर्ण बना डाला है। १८५७ की क्रान्ति सम्पूर्ण देश की क्रान्ति थी, लेकिन लेखक ने इसके कथानक को दिल्ली के इर्द-गिर्द ही रखा है। 'झाँसी की रानी' में जैसे 'ताँत्याटोपे' मुख्य सूत्र सञ्चालक है, वैसे ही 'बेकसी का मजार' में 'शाहसाहब'। उपन्यास-कार अपनी कल्पना के द्वारा भ्रान्तियों को भी ऐतिहासिकता की दृष्टि से निखार कर प्रस्तुत करता है। अन्तिम मुगल सम्राट् 'बहादुरशाह'

सम्राट् न होकर केवल एक पेन्शिनियर के रूप में रह गया था। यह इतिहास-समर्थित तथ्य है और इसी कथन की पुष्टि उपन्यासकार ने अंग्रेज कप्तान 'हडसन' से भी कराई है। गुलामी के दिनों का जो इतिहास है, वह हमारे देश का सच्चा इतिहास नहीं है। यह उन भ्रान्तियों से प्रमाणित होता है जो कि नवाब वाजिदअलीशाह के बारे में प्रचलित की गई थीं, जिन्हें कि भारतीय इतिहासज्ञों ने शोधोपरान्त पूर्णरूपेण असत्य सिद्ध कर दिया है। उपन्यासकार ने अंग्रेजों की दमन-नीति एवं क्रान्तिकारियों के अपूर्व साहस का ज्वलन्त चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें उद्धृत प्रायः सभी घटनाओं का एकाकार रूप में संगुंफन अत्यन्त पूर्ण रूप से न होने पर भी लेखक के अभूतपूर्व कौशल का चित्र प्रस्तुत करता है। लेखक ने शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों के बीच औपन्यासिकता की सरस निर्झरिणी बहायी है। उपन्यासकार ने क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाने में जितना प्रयास किया है उतना घटनाओं को सजीव बनाने में नहीं। उपन्यासकार ने सम्पूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को एक ही सूत्र में जोड़ना चाहा है। इसमें प्रायः सभी मुख्य घटनायें जैसे 'नानासाहब' का प्रार्थनापत्र जो कम्पनी के डाइरेक्टरों को इङ्गलैण्ड भेजा गया था और 'रङ्गो बापूजी' को सतारा राज्य के उत्तराधिकारी के लिए पैरवी करने के लिए विलायत भेजना आदि ऐतिहासिक घटनायें हैं न कि लेखक की कोरी कल्पना मात्र। कुछ पात्रों को छोड़कर प्रायः सभी पात्र इसमें ऐतिहासिक हैं। इस उपन्यास में 'गुल्शन' के सेक्स परिवर्तन का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह आधुनिकता के प्रभाव से रञ्जित जान पड़ता है। इस परिवर्तन के बिना भी उपन्यास सफल हो सकता था। इसमें कुछ अस्वाभाविक घटनाओं का भी चित्रण किया गया है, जिससे बचने पर उपन्यास और भी अच्छा होता। इस प्रकार की कुछ घटनाओं को छोड़कर अगर निष्पक्ष भाव से

देखा जाय तो यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में अपना प्रमुख स्थान बनाये हुए है। यह निर्विवाद है कि यह पुस्तक अपने ढङ्ग की अनूठी है और इसके आधुनिकतम होने के कारण ऐसा भान होता है कि ऐतिहासिक उपन्यासों का भविष्य मङ्गलमय है। उपन्यास का आरम्भ जितना ही चित्ताकर्षक ढंग से किया गया है उसका अन्त भी उतना ही द्रवीभूत करने वाला और कारुणिक है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें ऐतिहासिक तथ्यों और सत्यों की पूर्णता एवं कल्पनांश की न्यूनता है।

हिन्दी में और भी नवीन ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्राचीन ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त ऐतिहासिक यथार्थ अधिक और कल्पना की मात्रा न्यून है।

छठा अध्याय

कथा-साहित्य में कल्पना का स्थान

(क) कल्पना की मनोवैज्ञानिक व्याख्या :—

कल्पना वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम लोग अपने गत अनुभवों के आधार पर मानस-पटल पर एक नूतन चित्र खींचते हैं। कल्पना गत अनुभवों का ही नया स्वरूप है। जब हम अतीत की घटनाओं को यथारूप सामने लाते हैं तो वह स्मृति कहलाती है और जब उन्हीं घटनाओं को कुछ नया स्वरूप दे दिया जाता है तो वह कल्पना के नाम से अभिहित होती है। कल्पना के माध्यम से ही हम अपनी इच्छानुसार भूत की अनुभूत घटनाओं को एक नया आकार या स्वरूप दे सकते हैं, या देते हैं। कल्पना प्रत्यक्ष के समान ही एक क्रिया है। अन्तर इतना ही है कि प्रत्यक्ष में उत्तेजना रहती है किन्तु कल्पना में इसका अभाव रहता है। जो कुछ भी कल्पना है वह हमारे भूत के अनुभव पर ही निर्धारित है। कल्पना में पुराने अनुभवों के साधनों को काम में लाया जाता है, अपने सभी अनुभवों के उपकरणों को नये साँचे में ढाला जाता है तथा भिन्न-भिन्न घटनाओं का एकीकरण होता है।

समय-असमय में भी कल्पना में विच्छेद क्रिया काम करती है। कल्पना में स्वप्नावस्था की भी झलक होती है। कल्पना के भीतर न्यूनता भी करनी होती है। इस प्रकार यह देखा जाता है कि कल्पना में कभी मानसिक क्रियाओं का आश्रित होना आभासित होता है। कल्पना की निश्चित सीमा भी होती है। किसी भी वस्तु की निराधार कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि कल्पना के आधार हमारे गत अनुभव ही होते हैं। जिन घटनाओं या पदार्थों का पूर्ण अनुभव नहीं है उनकी कल्पना असम्भव है, जैसे किसी ने मिठाई कभी न खायी हो और उससे मिठाई के स्वाद का वर्णन करने के लिये कहा जाय तो वह कभी नहीं कर सकता।

कल्पना निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है:—

१—मौलिक संस्कार।

२—स्मृति की प्रबलता।

३—साहचर्य-अभिन्नता।

कल्पना में बहुत से लोग प्रसन्न हो जाते हैं और बहुत से लोग भयभीत हो जाते हैं क्योंकि कल्पना का प्रभाव उनके मन तथा शरीर पर प्रत्यक्ष के अनुरूप पड़ता है। प्रत्यक्ष का सम्बन्ध वर्तमान से होता है, किन्तु कल्पना का सम्बन्ध अतीत के पदार्थों तथा घटनाओं से रहता है। कल्पना और स्मृति इन दोनों की आधारशिला भूत है। कल्पनोत्पादक परिस्थिति का होना नितान्त आवश्यक है। मानस क्षेत्र में कल्पना का सदा उठना सम्भव नहीं है। यदि अनुकूल परिस्थिति न हो तो हमारे सतत प्रयत्न पर भी कल्पना का आविर्भाव होना कठिन है। जिस वस्तु का अर्थ अच्छी तरह न समझ में आवे अथवा जिस पर विचार अधूरा ही रह जाय तो ऐसी स्थिति में कल्पना का आविर्भाव

होता है। परस्पर विरोधी परिस्थितियों के उत्पन्न होने से मानस में कल्पना जागती है। मानव-जीवन के लिए कल्पना अत्यन्त उपयोगी है। यह सृष्टि भी तो आखिर किसी की कल्पना ही है। वैज्ञानिकों तथा कथाकारों की सफलता अधिकांशतः कल्पना पर ही निर्भर करती है। साहित्यिक, कथाकार तथा दार्शनिक अपनी कल्पना शक्ति से ही अपने साहित्य तथा दर्शन का निर्माण करता है। साहित्यिकों को देखने से मालूम होगा कि वे कल्पना द्वारा स्वर्ग को पृथ्वी पर ला देते हैं। उनके सौन्दर्य-वर्णन के सामने वास्तविक सौन्दर्य भी लज्जित हो जाता है। यह सब निश्चित कल्पना का ही प्रसाद है। जहाँ ऐसी कल्पना से मानव-समाज का उपकार होता है वहीं पर अनियन्त्रित कल्पना से हानि भी बहुत कुछ होती है। मरु-मरीचिका हमारी कल्पना का ही फल है। कलाकार की कल्पना के बारे में आंग्ल साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् 'गेटे' का कथन है कि 'वास्तविकता जो है वही सच है, आदर्शोन्मुख है लेकिन पूर्ण नहीं है।'

(ख) कल्पना का इतिहास में साहित्यिक महत्वः—

इतिहास में कल्पना का अपना विशिष्ट स्थान है। कल्पनाविहीन इतिहास केवल एक सूचीपत्र के रूप में ही जनता के सामने रह सकता है, न कि वह इतिहास के रूप को प्राप्त कर सकता है। इसके पूर्व कि कल्पना का महत्व निर्धारित किया जाय, यह जानना नितान्त आवश्यक है कि इतिहास और साहित्य का क्या सम्बन्ध है। इन दोनों का एक दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध है। इतिहास तथ्य की खोज कर उनका परिशीलन तथा अनुसन्धान करके सत्य को निर्जीव अवस्था में जनता के सामने रखता है। और इसी सत्य को लेकर जो मृत था, साहित्य उसको सजीव तथा रोचक बनाकर पाठकों के सामने प्रस्तुत करता और

इस प्रकार इतिहास के कंकाल सत्य को मांसल बनाता है। 'विलियम हेनरी हडसन' ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी आफ लिटरेचर' में लिखा है कि 'फिक्शन में सब चीजें सत्य होती हैं लेकिन नाम तथा तिथियां सत्य नहीं होतीं, इसी के विपरीत इतिहास में पायी जाने वाली सब चीजें असत्य होती हैं, केवल नाम और तिथि में सत्यता होती है'। इस प्रकार यह प्रकट होता है कि इतिहास और साहित्य एक दूसरे के पूरक के रूप में हैं। अब कल्पना का स्थान और महत्व निर्धारित करना है। जिस प्रकार कोई भी साहित्यिक ग्रन्थ कल्पना-विहीन होकर साहित्य के भण्डार को भर नहीं सकता उसी प्रकार इतिहास में कल्पना का होना परमावश्यक है, भले ही कल्पना की मान्यता अन्य साहित्यिक ग्रन्थों की अपेक्षा कम ही क्यों न हो। कल्पना के बारे में मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'साकेत' में लिखा है कि:—

'कहा माण्डवी ने उलूक भी
लगता है चित्रस्थ भला,
सुन्दर को सजीव करती है,
भीषण को निर्जीव कला।'

जिस प्रकार कल्पना के बिना साहित्य सरस और रोचक नहीं हो सकता ठीक उसी प्रकार इतिहास में सब तथ्य सत्य होते हुए भी उनमें कल्पना का परिवेश रोचकता के लिए नितान्त आवश्यक है। यह सत्य है कि इतिहासकार भग्नावशेषों को देखकर तथा शिलालेखों के माध्यम से यह जान लेता है कि अमुक तिथि को अमुक युद्ध इस स्थान पर हुआ तथा अमुक व्यक्ति को विजय प्राप्त हुई। अगर इतिहासकार इस तथ्य को यथारूप अपने इतिहास में लिख देता है तो वह बिलकुल प्राणहीन पुतले के समान नीरस हो जाता है। इस बात को जानकर

ही इतिहासकार कल्पना का अंचल पकड़ता है और अपने पूर्वानुभव तथा स्मृति के माध्यम से वह कल्पना की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ अग्रसर होता है और उसी समय उस युद्ध का रोमांचकारी एवं हृदय को प्रकंपित करने वाले दृश्यों तथा फौज इत्यादि का बहुत ही रोचक वर्णन करता है। इस वर्णन को पाठक बड़े ध्यान से मग्न होकर पढ़ता है। इतिहास में कल्पना के पल्ले को पकड़ने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी साहित्य में आवश्यक है लेकिन इतिहास भी कल्पना-विहीन नहीं हो सकता। कल्पना का इतिहास में उतना ही महत्व है जितना खाद्य सामग्री में लवण का। कल्पना-विहीन इतिहास उच्च-कोटि का इतिहास नहीं हो सकता, चाहे वह तथ्यपूर्ण और सत्य से ओत-प्रोत ही क्यों न हो।

(ग) इतिहास के तथ्यों को जोड़ने वाली कड़ी:—

इस पर विस्तार से विचार करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्देश्य क्या होता है। यदि इनका उद्देश्य तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्वरूप उपस्थित करना मानें तो इतिहास से इसमें कोई विशेषता नहीं होती। आजकल साहित्य में मानव-जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रवृत्तियों तथा समाज के साथ उनके सम्बन्धों की व्याख्या करना साहित्य तथा साहित्यकार का लक्ष्य हो गया है। किसी उपन्यास में घटना उतनी ही अपेक्षित होती है जो चरित्रों के विश्लेषण के लिए पर्याप्त हो और उपन्यास की कथा की धारा को आगे बढ़ाकर पाठक की जिज्ञासा को अन्त तक बहकावा देती रहे। दूसरी बात यह होती है कि प्रत्येक लेखक या कवि अन्य लोगों की भाँति ही अपने समाज का एक व्यक्ति होता है जो अपने देश-काल की आकांक्षाओं एवं आन्दोलनों से प्रभावित होता है और उसका समाधान अपनी कृतियों

में करता है। तीसरी बात यह है कि प्रत्येक आदर्शवादी कथाकार के सामने देश-काल के बन्धनों से मुक्त करके जीवन तथा समाज को ऊँचा उठाने के लिए उसकी वाणी में कुछ स्थायी मूल्य और उच्च संदेश होते हैं। उन्हें व्यक्त करने के लिए वह निरन्तर व्यग्र रहता है। इन्हीं तीनों बातों को लक्ष्य में रखकर उपन्यासों का सर्जन किया जाय तो श्रेयस्कर होगा। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक वातावरण क्यों चुना जाय? इसके प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि मानवहृदय में अपने अतीत के प्रति एक अद्भुत आकर्षण एवं राग होता है। वह उस समय की विभूतियों एवं घटनाओं की कल्पना करके आनन्दमग्न हो जाता है। इसीलिए वह उस काल के सामाजिक एवं राजनैतिक चित्र को उपस्थित करने में आनन्द की प्राप्ति करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास के तथ्यों को जोड़ने वाली कड़ी कल्पना है, क्योंकि ऐतिहासिक उपन्यासकार कल्पना का पुट देकर इतिहास को रुचिकर बनाने में समर्थ और मूल वस्तु को मनोरम रखने में शक्त है। दूसरी बात कल्पना के कड़ी होने में यह है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में देश-काल का चित्रण ही इनका प्राण है। इसका उद्देश्य किसी विशेष काल के जीवन के साथ समन्वय करना होता है। उपर्युक्त तथ्यों को देखकर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इतिहास के निर्जीव तथ्यों को सजीव बना कर जोड़ने वाली कड़ी के रूप में कल्पना ही है।

(घ) रस एवं मनोरञ्जन की दृष्टि से कल्पना का महत्व :—

रस का परिपाक हुए बिना कल्पना पूर्ण नहीं हो सकती। कल्पना में सजीवता लाने के लिए रस का होना नितान्त आवश्यक है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि रस कल्पना के आश्रित है अथवा कल्पना रस के आश्रय में है। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

मन को पूर्णरूप से आह्लादित करने तथा हृदय को प्रभावित करके रसोत्पादन करने की क्षमता कल्पना में ही है। केवल कथानक को ही शुष्क रूप से चित्रित कर देने पर उसको कलाकृति कभी नहीं कहा जा सकता अपितु वह केवल एक कङ्काल मात्र दृष्टिगोचर होगा। 'हैनरी जेम्स' का कथन है कि जो घटना सजीव बनकर आँखों के सामने नहीं आती वह अस्पष्ट रहती है। जो घटना अस्पष्ट रहती है उसका पूरा चित्र नहीं प्रस्तुत किया जा सकता और जिस कृति में घटना का पूरा चित्र नहीं प्रस्तुत होता वह कलाकृति नहीं है। इससे यह मालूम होता है कि उपन्यासकार को उपन्यासों में वातावरण उत्पन्न करने पर बहुत ध्यान देना चाहिए।

उपर्युक्त नियम को कार्यान्वित करने के लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। कथानक के पात्रों को देश-काल के बन्धन में रखते हुए भी इस प्रकार उसका निर्माण करना पड़ता है कि वह देश-काल की परिधि से परे हो जाय। जिस प्रकार नगीने के विना अँगूठी शोभायमान नहीं होती ठीक उसी प्रकार देश-काल के वातावरण का पूर्णरूपेण चित्र न प्रस्तुत करने पर उपन्यास शोभायमान नहीं होता। आधुनिक युग का उपन्यासकार ऐतिहासिक पात्रों को लेकर कथानक का सर्जन करने के उपरान्त उसमें रसानुभूति उत्पन्न करने के लिए कल्पना की ओर अग्रसर होता है। प्रत्येक उपन्यास-कार को अपने उपन्यास में तथ्य के साथ प्रामाणिक सत्य को प्रस्तुत करते हुए कल्पनाजनित मनोरञ्जकता भी अपनी कृति में प्रदर्शित करनी पड़ती है। प्राचीन काल में किसी एक राजा के वर्णन में एकाङ्गिता लाकर और उसमें कल्पना का पुट देकर उसे मनोरञ्जक बनाया जाता था और वह उच्चकोटि का उपन्यास भी कहा जाता था। लेकिन अब भारतीय जीवन के किसी एक विशेष क्षेत्र अथवा पक्ष

को अपनाकर उसका अङ्कन करने की प्रवृत्ति गाँवों तक ही सीमित न होकर शहर एवं उसके महल्लों तक का भी अध्ययन कराती है। जीवन के वास्तविक तथ्य को सामाजिक उपन्यास के रूप में कई उपन्यासकारों ने उपस्थित किया है। लेकिन इस प्रकार का महत्वपूर्ण अध्ययन श्री अमृत लाल नागर की 'बूँद और समुद्र' है जिसमें उन्होंने लखनऊ के मध्यवर्गीय परिवार का विस्तृत अध्ययन किया है। मानव की जन्म-जात भावना ईर्ष्या, डाह, कलह और कुरूपता इत्यादि का बहुत ही सरस और रोचक चित्र कल्पना के माध्यम से जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

आज के हिन्दी उपन्यास की विशेषता सामाजिक भावना भी है। यह भावना हिन्दी उपन्यास को प्रेमचन्द से परम्परा-रूप में प्राप्त हुई है। यह चेतना हिन्दी के उपन्यासकारों में बहुत ही तीव्रता के साथ हृदय में पैठ गई है। श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने बृहद् उपन्यास 'जहाज के पंछी' में कलकत्ता नगरी का वर्णन विस्तृत रूप से किया है। इसमें शोषकरूपी जोंक, कीटाणु और दीमक मनुष्य को खाए डालते हैं। बड़े-बड़े नेता और उनके कार्य, व्यभिचार और अनाचार के अड्डे, कलकत्ता महानगरी की छिपी उपनगरी आदि का वर्णन प्रत्यक्ष रूप से देखते हुए, कल्पना से उसको मर्यादित करते हुए एवं मनोरञ्जक भावों से उसकी बीभत्सता को आवरण में ढकते हुए विज्ञ उपन्यासकार पाठकों के सामने अपनी भावनाओं के चित्र को सफल रूप में प्रस्तुत कर सका है।

हिन्दी उपन्यास आज ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत समृद्ध हुआ है। श्री वृन्दावन लाल वर्मा के 'हाथी के दाँत' नामक उपन्यास में सामन्तवाद और नेताशाही आदि कुचक्रों का बहुत ही सरल चित्रण किया गया है। इन सब उपन्यासों में से कल्पना के अंश को निकाल

दिया जाय तो कथानक पत्र-पुष्प-विवर्जित ठूँठ मात्र रह जायगा। उपन्यासकार जब विचारों को जोड़कर कथानक तैयार करता है तो उसके उपन्यास का ढाँचा ही चरमरा कर बैठ जाता है और उसके सब जोड़ खुल जाते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासकार उस काल में जन्म लेने के कारण कथानक का सर्जन करते समय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों को टटोलकर वास्तविक तथ्यों को बाहर लाता है। वह एक उच्चकोटि के जौहरी के समान उनमें से सुन्दर-सुन्दर तथ्यों को यथारूप अपनी कल्पना से सुसज्जित करके और अलङ्कृत करके पात्रों को सजीव बनाता है और उनको यह शक्ति भी प्रदान करता है जिसके बल पर तथाकथित पात्र, पाठक और श्रोता दोनों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ते हुए रस-निष्पत्ति और अनुरञ्जन करने में सफल होते हैं। रसशास्त्र के अनुकूल शृङ्गार रस के परिपाक के लिए उद्दीपन की सामग्री का होना नितान्त आवश्यक है और वह सामग्री प्रायः प्राकृतिक वर्णन से ही प्राप्त हो सकती है। ऐतिहासिक उपन्यास का आधार इतिहास-प्रसिद्ध जीवन-वृत्त एवं कार्य-व्यापार होते हैं। कल्पना के योग से इतिहास के इति-वृत्तात्मक वर्णनों को उपन्यास का रूप दिया जाता है। कथानकरूपी कैनवास तथा विचाररूपी रङ्ग और मनोरञ्जनरूपी भाव आदि आवश्यक उपकरणों को इतिहास से लेकर कल्पना की कूची द्वारा पात्रों का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इन उपन्यासों में देश-काल के वर्णन के समय कल्पना की मनचाही उड़ान नहीं भरी जा सकती, क्योंकि देश-काल के वातावरण का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। ऐतिहासिक उपन्यास का यह मूलाधार है। यदि इसकी अवहेलना की जाय तो यह ठीक उसी प्रकार लगेगा जैसे तिलकधारी के सिर पर फेज़ टोपी।

श्री बृन्दावन लाल वर्मा के 'गढ़-कुण्डार' में प्रधान घटनाएं और प्रधान पात्र सभी ऐतिहासिक हैं। परन्तु कथा में मनोरंजकता और प्रवाह लाने के लिए अर्जुन-कुमार, इब्न-करीम आदि कल्पित पात्रों तथा मानवती, अग्निदत्त और तारा–दिवाकर आदि की उद्भावना की गई है। परन्तु यह बहुज्ञता ही है कि कल्पित पात्र, घटनाएँ और कहानियां पूर्ण रूप से समयानुकूल हैं। कोई ऐसी घटना, ऐसी रीति कल्पित नहीं है जो उस समय संभव न रही हो। खंगारों को शराबखोरी की जो आदत थी वह उनके विनाश का प्रधान कारण बनी। कल्पना के द्वारा 'गढ़ कुण्डार' में खंगार सरदारों के बुन्देलों के यहाँ शराब में मस्त होकर कर्त्तव्यच्युत होने का जो चित्र दिखाया गया है वह बड़ा ही सुन्दर और प्रभावकारी है। 'विराटा की पद्मिनी' ऐतिहासिक तथ्यों से मिश्रित रोमान्स है। इसके भीतर अनेक काल की घटनाओं का सम्मिश्रण है। इसमें पात्रों के नाम भी काल्पनिक हैं परन्तु कथानक का जो समय है उसके अनुकूल ही घटनाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इसमें कोई घटना कालविरुद्ध नहीं है, भले ही वे सब पूर्णरूपेण काल्पनिक ही क्यों न हों।

कल्पना में इतनी शक्ति है कि वह किंवदन्तियों को लेकर कथानक का निर्माण कर सकती है। पाश्चात्य उपन्यास-साहित्य में उपन्यासों का वर्गीकरण भौगोलिक स्थिति पर होता है। इनमें जीवन की किसी दशाविशेष का ही चित्रण प्रमुख होता है। चरित्र-चित्रण और सामाजिक परिस्थिति का भी मार्मिक सम्बन्ध होता है। इससे एक के बिना दूसरे का विचार करना कठिन हो जाता है। वातावरण के सफल तथा मनोरम चित्रण का कहानी के लिए बहुत मूल्य होता है। समाज में ऐसे मनुष्यों की संख्या अधिक है जो उच्चादर्शों के स्वरूप उपस्थित करते हैं, लेकिन उन्हीं के अन्तस्तल में कितनी ही

विकृत वासनाएँ नग्न रूप से कुलबुलाया करती हैं और उपयुक्त अवसर तथा परिस्थिति पाकर अभिव्यक्त होती हैं। यहाँ पर यथार्थवादियों का कहना है कि साहित्य में इन तथ्यों का समावेश हो। दूसरा पक्ष आदर्शवादियों का है जो कहते हैं कि साहित्य लोकमंगल के लिए है और उसमें समाज के विकृत रूप को आँखों से ओझल करके कल्पित संसार की सृष्टि करें जहाँ सब कुछ सुन्दर है। यह आदर्शवाद और यथार्थवाद की दो सीमाओं के बीच वास्तविक रूप से सत्य का निवास है। वैज्ञानिक अनुसंधान के युग में साहित्य के भीतर कल्पना का अंश उतनी ही मात्रा में होना चाहिए जितना कि सर्वग्राही हो सके। समाज के बाहर के उच्च कल्पित लोक या व्यक्ति की सुन्दरता और सरलता पर विश्वास न करके समाज उदासीन हो जाता है और इस कल्पना-लोक के कार्य-कलापों आदि को मानने में अपने को असमर्थ पाता है, और इस प्रकार यह सृष्टि निर्जीव हो जाती है। इसीलिए लेखक का कर्त्तव्य होता है कि वह अपने पात्रों और अपनी कल्पित सृष्टि के व्यापारों में यथार्थवाद का पर्याप्त पुट देकर उसे निर्जीव होने से बचावे और मानव-जीवन को उच्च मानवता के स्तर पर उठा सकने में शील के साथ-साथ रस की धारा भी प्रवाहित करने में सफल हो सके।

इस कसौटी पर कसने पर आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा आत्मकथा-पद्धति पर रचित 'बाणभट्ट की आत्मकथा' बहुत अंशों में खरी उतरती है। उपन्यास का नाम पढ़ते ही विदित हो जाता है कि इसकी कथावस्तु सम्राट् हर्षवर्धन के काल से ली गई है। इसके कुछ पात्र पूर्णरूपेण ऐतिहासिक हैं जैसे बाण, हर्षवर्धन, कृष्णवर्धन, शीलभद्र, राज्यश्री और जयन्तभट्ट। जितने भी स्थान इस उपन्यास में वर्णित हैं वे सब ऐतिहासिक हैं परन्तु कार्य-कलाप और घटनाएँ

काल्पनिक हैं। घटनाओं के पूर्णरूप से काल्पनिक होते हुए भी विद्वान् लेखक ने उनको इस प्रकार से संजोया और वर्णन किया है एवं उसका संगुम्फन इस ढंग से किया है कि वह इस युग के और समाँज के अनुरूप और उपयुक्त मालूम पड़ता है। लेखक ने तत्कालीन ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर किसी स्थान, वातावरण, घटना, सामाजिक व्यवस्था और व्यवहारों का चित्रण सजीव रूप से किया है। ऐतिहासिक पात्रों के जीवन की घटनाएँ जो कुछ भी विज्ञ लेखक ने उपन्यास में दिखाई हैं वे कहीं भी इतिहास में वर्णित नहीं हैं। परन्तु यह लेखक की प्रतिभा और उसके सर्वांगीण ज्ञान का ही परिणाम है कि इसमें उन पात्रों के अनुरूप उनसे सम्बन्धित काल रहित दोष की घटनाओं की सृष्टि की गई है। इस उपन्यास के सभी पात्रों में स्वाभाविकता और यथार्थ का प्रत्यत्त रूप परिलक्षित होता है। 'बाण' में प्राचीन कवियों के समान मस्तानापन, अल्हड़पन तथा स्वतंत्रता की भावना स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इसमें कोई भी चरित्र अनावश्यक रूप से नहीं लाया गया है। इसका छोटे से छोटा, बड़े से बड़ा—प्रत्येक पात्र किसी न किसी देशकाल, जीवन, समाज या राष्ट्र का रहस्य खोलकर कथा को अग्रसर करने में और लेखक के उद्देश्य की सिद्धि में सहायक सा होता हुआ मालूम पड़ता है। कथानक में पात्रों का आना-जाना यथासमय और यथानुकूल है। पात्रों में वर्गगत और व्यक्तिगत दोनों विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। इस उपन्यास को लिखने में लेखक को स्वयं बाणभट्ट बनना पड़ा है और इस प्रकार लेखक और लेख्य की भूमिका में उपन्यासकार बहुत ही खरा और सफल उतरता है। जब हम उपन्यास में वर्णित प्रकृति के मनोहर चित्र एवं त्योहारों के उत्सवों के वर्णन का अध्ययन करते हैं तब यह दृष्टिगत होता है कि लेखक की भावुकता कल्पना और अलंकारों की झंकारों के बीच

से निकलती हुई भाषा की उत्तरोत्तर वृद्धि और विकास की ओर अग्रसर होती हुई 'कादम्बरी' की सरस कल्पना में तिरोहित हो जाती है। इस प्रकार यह देखा जाय तो रस और मनोरंजन की दृष्टि से कल्पना की विभूति यह उपन्यास आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

इसलिए यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उपन्यासों में चाहे जिस किसी भी वर्ग का चित्रण क्यों न हो कल्पना का होना नितांत आवश्यक है। रस की निष्पत्ति और मनोरंजकता के लिए कल्पना की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है।

उपन्यास की व्याख्या करते हुए सर आर्थर क्विलर काउच ने कहा है कि 'उपन्यास ऐसी कोई भी कहानी है जो गद्य में लिखी गई हो और जो वास्तविक जीवन का चित्र सम्मुख रखती हो तथा जिसमें विशेषकर उन कौतूहलपूर्ण घटनाओं का वर्णन हो जो उसमें चित्रित पुरुषों और स्त्रियों के जीवनकाल में घटी हों।'[1] उपन्यास में वर्तमान को ही आधार मानकर भविष्य की कल्पना की जा सकती है। सत्य से हीन कौशल उपन्यास के लिए अभिशाप है और सत्ययुक्त कौशल वरदान है। उपन्यास में मनोरंजकता लाने के लिए भी कल्पना की आवश्यकता पड़ती है और यह पहले ही कहा जा चुका है कि कल्पना सत्याश्रित होती है। किसी ने ठीक ही कहा है कि इस युग में उपन्यास शिष्टाचार का सम्प्रदाय, बहस का विषय, रामायण और महाभारत की तरह धर्म-पुस्तक, इतिहास का चित्र, बेकारी का

---

१. 'A novel is a fictitious prose narrative or tale presenting a picture of real life, especially the emotional crisis in the life history of the man and women portrayed.'

(Sir Arthur Quiller Quouch)

मसाला और पाकेट का थियेटर हो गया है। इसने साहित्यिकों एवं साहित्यांगों दोनों को अधिक निकट ला दिया है।

इस प्रकार यदि देखा जाय तो यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि रस और मनोरंजन की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों में कल्पना का उतना ही स्थान है जितना दिन में प्रकाश का। मानव हृदय में अपने अतीत के प्रति औत्सुक्य होता है, वह उस समय की घटनाओं की कल्पना करके आनन्दसागर में गोते लगाता है। मगध-सम्राटों में चन्द्रगुप्त, अशोक, समुद्रगुप्त के विषय में और इनके समय के भारत के सम्बन्ध में जब हम विचार करने लगते हैं तो स्वभावतः मन में ऐसी गुदगुदी-सी होने लगती है, जो कल्पना में अभिभूत करती सी जैसे किसी मायामन्त्र के बल पर स्थान, काल, पात्र के समस्त परदों को विदीर्ण करती हुई हमारे मानस चक्षुओं को वह बल प्रदान कर देती है कि हम पीतचीवरधारी अशोक को और एक हाथ वीणा के तार पर और दूसरा तलवार की धार पर रखे समुद्रगुप्त को प्रत्यक्ष-सा देखने और उनकी वाणी तथा वीणा की झंकार सुनने लगते हैं। इसीलिए उस काल की सामाजिक रीति-नीति का चित्रण उपस्थित करने पर उसके अध्ययन मात्र से पाठक के हृदय में रसोद्रेक होने लगता है। इन ऐतिहासिक दृश्यों की कल्पना मात्र में ही रस उत्पन्न करने की क्षमता है। शुक्ल जी भी इस मत का समर्थन करते हैं। जिस उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्य एवं कल्पना का सामंजस्य सानुपातिक होता है वह उच्चकोटि का सफल उपन्यास होता है। कल्पना के सम्बन्ध में भी यह कहना ही पड़ेगा कि वह ऐसी न हो कि केवल रसोद्रेक मात्र कर सके परन्तु स्वयं ऐतिहासिक युग के विरुद्ध जा पड़े। इससे रस के परिपाक में पूर्णता नहीं आती। राहुल जी ने अपने 'सिंह सेनापति' नामक उपन्यास में बौद्ध काल की पीठिका पर मार्क्सवादी सिद्धान्तों को स्थापित कर दिया है। ऐसा आचरण

लेखक का दुराग्रह प्रदर्शित करते हुए ऐतिहासिक युग के साथ अन्याय करता है और कल्पनाजन्य रस की मर्यादा में बड़ा बाधक सिद्ध होता है।

आदर्शवादी लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए घटनाओं और पात्रों की यथारूप कल्पना करके आदर्श प्रस्तुत करता है। कल्पना का तात्पर्य उन नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से है जो अनुभूत शक्तियों के आधार पर नूतन दृश्य-विधान करती है और ऐतिहासिक रूप में अपना कोई अस्तित्व नहीं रखती। संस्कृत साहित्य में भी प्राकृतिक वर्णन करते समय कवियों ने रसोत्पादन के लिए कल्पना का आश्रय लिया। अगर नदी और समुद्र के मिलन को साधारण रूप से कह दिया जाय तो उसमें न तो कोई रोचकता ही है, न पाठक के हृदय के भीतर रसोत्पादन करने की क्षमता ही आ सकती है। उस समय कवि या लेखक को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। रघुवंश में कालिदास ने नदी और समुद्र को स्त्री और पुरुष के रूप में देखा है। वे कहते हैं कि 'दूसरे लोग केवल स्त्रियों का अधर-पान करते हैं, अपना अधर उन्हें नहीं पिलाते, पर समुद्र इस बात में औरों से बढ़कर है, क्योंकि जब नदियां ढीठ होकर चुम्बन के लिये अपना मुख समुद्र की ओर बढ़ाती हैं तब वह बड़ी चतुराई से अपना तरंगरूपी अधर उन्हें पिलाता है, और उनका अधरपान स्वयं करता है।

उपर्युक्त तथ्यों का विवेचन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि रस की निष्पत्ति के लिए कल्पना का योग अत्यन्त अपरिहार्य है। कल्पना विहीन साहित्य निष्प्राण साहित्य होता है।

(ङ) कल्पना में यथार्थ:—

यथार्थवाद का जो रूप प्राचीनकाल में प्राप्त था वह आज आंग्ल साहित्य में अधिक परिवर्तित हो चुका है और अब वह कल्पनामय एवं

रहस्यमय हो गया है। इसमें बहुत-सी बातें सत्य से दूर और असंभव हो गई हैं तथा विश्लेषण के लिए उसमें काल्पनिक बुद्धि की आवश्यकता प्रतीत होती है। इस क्षेत्र-विस्तार को यथार्थवाद के पोषक सत्यन्विषण का नूतन मार्ग कहते हैं। कवि और यथार्थवादी में अन्तर इतना ही है कि कवि अपने ऊपर पड़े हुए प्रभाव का वर्णन अपनी कल्पना-जनित बुद्धि द्वारा निरपेक्ष दृष्टि से करता है जब कि यथार्थवादी उसका यथारूप वर्णन कर देता है। यह अपने ऊपर पड़े प्रभाव का वर्णन नहीं करता। इस बारे में अपना मत प्रस्तुत करते हुए विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि 'चित्रकार जब चित्र बनाने बैठता है तब तथ्य का संवाद देने नहीं बैठता। वह तथ्य को उसी हद तक स्वीकार करता है, जिस हद तक उसको उपलब्ध करके किसी एक सुषमा का छन्द विशुद्ध रूप में मूर्त हो सके। यह छन्द विश्व का नित्य पदार्थ है, इसी छन्द के ऐक्य-सूत्र में ही हम तथ्यों में सत्य का आनन्द पाते हैं। इस विश्व-छंद के आलोक में बिना उद्भासित हुए तथ्य का हमारे लिए कोई मूल्य ही नहीं'।[1]

'रस्किन' ने तो इसी आधार पर कलाकारों की उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणियां भी निर्धारित कर दी हैं। उसका कथन है कि संसार में जो कुछ है सभी में सुन्दरता और कुरूपता का मिश्रण है। अधम कलाकार यथातथ्य चित्रण के जोश में वर्ण्य वस्तु के सुन्दर पहलू पर दृष्टि ही नहीं डालता और जो कुछ अकथ है, कुरूप है उसी का चित्रण कर जाता है। परन्तु अनावश्यक जोश के अभाव में वह कलाकार जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही चित्रित करता है मध्यम श्रेणी का

---

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर—(रवीन्द्र साहित्य, भाग २४)
अनुवादक—हंस कुमार तिवारी, पृष्ठ ४३-४४।

कलाकार कहलाता है। ऐसे ही कलाकारों को वस्तुतः तथ्यवादी कहना चाहिए। परन्तु उत्तम कलाकार वह है जो असुन्दर का या तो त्याग कर देता है या अपनी कल्पनाशक्ति से उसे भी सुन्दर बना लेता है और यों गोस्वामी तुलसीदास जी की इस उक्ति को चरितार्थ करता है कि:-

'संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।'[1]

जन-समुदाय की कठिनाइयां और शोषक वर्ग का शोषित वर्ग पर अत्याचार देखकर जो भावुकता उत्पन्न होती है उसी के कारण लेखक के भीतर कल्पनात्मक दृष्टि का निर्माण होता है और उसी से पता चलता है कि उपन्यासकार त्रस्त समुदाय को किस दृष्टि से देखता है। इस प्रकार कल्पना यथार्थ को और भी दृढ़ बनाती हुई अध्येता के हृदय में अमिट छाप छोड़ती हुई निरन्तर प्रगति को प्राप्त होती है। इस प्रकार साहित्य में कल्पना यथार्थवाद के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ती हुई आगे बढ़ती है।

---

१. देखिए—रामचरित मानस—गोस्वामी तुलसीदास जी।

१—सामाजिक महत्व और उनके मूल में निहित उद्देश्यः—

ऐतिहासिक उपन्यास मुख्यतः इतिहास है बाद में उपन्यास। इतिहास में रोचकता न होने से वह हृदयग्राही नहीं हो सकता, उसकी विधा आधुनिक युग के अनुकूल है। इसके सभी पात्रों का ऐतिहासिक होना अत्यन्त आवश्यक है। अतीत के ज्ञान और समसामयिक सामाजिक व्यवस्था का कौतूहल प्रत्येक मानव के हृदय में जागरित रहता है। ऐतिहासिक यथार्थ को लेकर साहित्यकार ऐसे चरित्र का निर्माण करना चाहता है जो वर्तमान समाज को प्रेरणा प्रदान कर सके तथा उस समय की परिस्थितियों को इस प्रकार उभार कर सजीव रूप से रखना चाहता है जिसके परिणामों के आधार पर हम वर्तमान समाज को उसके दोषों तथा दुर्बलताओं से बचा सकें। ऐतिहासिक उपन्यासों को सचाई के साथ राष्ट्रीय जीवन के महान आन्दोलनों का सजीव चित्रण उपस्थित करना चाहिये। साहित्यकार को सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये कि वह इतिहास के माध्यम से वर्तमान समस्याओं का हल प्रस्तुत कर सके और आदर्श की प्रतिष्ठापना करने के लिये कल्पना का

सहयोग प्राप्त करे। कोई भी उपन्यास यथार्थवादी ऐतिहासिक उपन्यास तभी हो सकता है जब कि तत्कालीन समाज एवं राष्ट्र के सजीव चित्र को उपस्थित करने के साथ ही वह कला तथा कलात्मक गुणों के द्वारा समस्याओं का समुचित हल प्रस्तुत कर सके। वास्तविक तथ्य का पूर्णरूपेण निरूपण करने पर यह ज्ञात होता है कि वही सर्वश्रेष्ठ साहित्य बन कर आज तक जीवित रह सका है जिसमें अपने युग का सर्वश्रेष्ठ और प्रभावोत्पादक चित्र चित्रित हुआ है।

समाज की वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण ही सामाजिक यथार्थवाद कहलाता है। इस प्रकार का चित्र साहित्य में चित्रित करना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य होता है। इसका एक मात्र कारण यह है कि साहित्यकार अपने अनुभव एवं कल्पना के आधार पर चित्र प्रस्तुत करता है। समाज की वैयक्तिक और सामाजिक दयनीय परिस्थितियों का एवं भ्रष्टाचारों का वर्णन ही यथार्थवाद का मुख्य लक्ष्य होता है। इसके साथ ही लेखक को इन सब अनाचारों का वर्णन इस प्रकार से करना पड़ता है कि औचित्य तथा अनौचित्य को पाठक सरलता से परख सके और उन मर्यादाओं का पूर्णरूपेण पालन कर सके जिस पर चल कर एक आदर्श समाज की प्रतिष्ठापना हो सकती है। इस प्रकार के आदर्श समाज की स्थापना के काल-क्रमानुसार उसका मान बदलता रहता है। यही कारण है कि कोई निश्चित मानदण्ड नहीं स्थापित हो सका है। प्रत्येक उपन्यास को अगर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उसमें समाज के बदलते हुये मान-दण्ड का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक उपन्यास के भीतर मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू का विस्तार से विचार किया गया है। परन्तु प्रत्येक के भीतर चाहे वह ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक अथवा किसी भी प्रकार का उपन्यास क्यों न हो, उसमें प्रेम तत्व की ही प्रधानता अथवा आग्रह दिखलाई पड़ता है।

पौराणिक कथानकों को लेकर जिस किसी भी उपन्यास का सर्जन हुआ है उसमें प्राचीन साहित्य और संस्कृति से लोगों को परिचित कराना ही मूल उद्देश्य है। साहित्यकार अपने काल के सभी प्रकार के वातावरणों से प्रभावित होता है। प्रत्येक साहित्य के अन्दर किसी न किसी प्रकार की सामाजिक हित की भावना को रखते हुये कृति-कार उसको समाज में प्रस्तुत करता है। इसका मूल उद्देश्य साहित्य के द्वारा समाज के सामने एक काल्पनिक सुखी समाज के सुखमय जीवन का चित्र उपस्थित करना तथा यथावत् जीवन प्राप्ति की एक झलक पैदा करना हो सकता है। लेकिन समाज वर्तमान दुःखावस्था को ही नियति समझ कर उसको एक कल्पना मात्र समझ बैठता है।

सत्य दो प्रकार के होते हैं एक कठोर सत्य, जो आँखों देखा सत्य है। दूसरा सम्भावित सत्य, जो दृष्टिगत न होने पर भी विश्वसनीय है। ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐसे समाज और व्यक्ति का चित्रण करना पड़ता है जो कि अदृश्य है और उनके साथ खेलवाड़ करना उचित नहीं है। ऐतिहासिक कथा साहित्य के लिए ऐसे काल की कथा को चुना जा सकता है जिसकी कुछ प्रामाणिक लिखित सामग्री प्राप्त हो। प्रत्येक युग में इस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं और परिवर्तन लाने के लिए कौन-कौन सी शक्तियाँ सहायक हुई हैं तथा सामाजिक रूप-रेखा क्या है इन सभी का चित्रण उपन्यासों में करना नितान्त आवश्यक है। आज के उपन्यासों में रोचकता न होने के कारण आज की समस्याओं का विलीनीकरण कथानक के तथ्य एवं समस्या से अलग हो गया है। अब समस्याओं के मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विश्लेषण का अतिरेक हो गया है जिससे वह हृदयग्राही न होकर बुद्धिग्राही हो गया है। आधुनिक सामाजिक उपन्यासकार, चाहे वे मार्क्सवादी हों या फ्रायड-वादी हों वह सजीव व स्वतन्त्र पात्रों की सृष्टि करके अपने आदर्शों के

निष्प्राण पात्रों का ढाँचा खड़ा करते हैं। और सामाजिक हीनताओं और कुण्ठाओं के नग्न प्रदर्शन को ही समाजसुधार मानते हुए जो कुछ समस्या लक्षित होती है उसको खड़ा करते हैं लेकिन समस्या का उचित हल प्रस्तुत करने में अपने को पूर्णरूपेण अशक्त पाते हैं। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी की सम्मति में ऐसे यथार्थवादी साहित्य से साहित्य और समाज के हित के स्थान पर अहित हो रहा है।

उपन्यासकार का प्रथम प्रयोजन मनोरञ्जन है बाद में और कुछ, इसे उपन्यासकार भूल जाते हैं। वर्तमान जीवन से लिये हुये पात्रों में वह आकर्षण कहाँ से आ सकता है जो अतीत में छिपे हमारे प्राचीन ऐतिहासिक पूर्वजों के बीच से आये हुये पात्रों में मिलेगा। इङ्गलैण्ड में अब भी 'सर वाल्टर स्काट' के उपन्यास जिस चाव से पढ़े जाते हैं उस चाव से 'टामस हार्डी' तथा अन्य समस्याप्रधान लेखकों के उपन्यास नहीं पढ़े जाते। इसी से इतिहास और साहित्य का महत्व बनाते हुये किसी ने कहा है कि 'इतिहास राष्ट्र का जीवन-वृत्त है और साहित्य राष्ट्र की आत्मकथा है'।[१] जिन उपन्यासों में रीति-रिवाजों और जन-सामान्य के मनोभावों का सुन्दर चित्रण उपस्थित किया जा सकता है वे ही उपन्यास अधिक सफल होते हैं। ऐसे उपन्यासों में कल्पना का योग कुछ नूतन पात्रों की सृष्टि मात्र में ही किया जाता है और इस प्रकार का भी प्रयत्न किया जाता है कि जिस युग के कथानक को लेकर कथा का प्रवाह अग्रसर होता जा रहा है उस वातावरण में किसी भी प्रकार की विजातीयता न मालूम पड़े। इसी प्रकार ऐतिहासिक काल के प्रतिष्ठित उन काल्पनिक चरित्रों के कार्य-व्यापारों और मनोभावों को कलात्मक ढङ्ग से चित्रित करके लेखक अपने युग के समाज के लिए कुछ

---

१. 'History is the Biography of the nation and Literature is the Autobiography of the nation.'

चिन्तन की सामग्री भी प्रस्तुत करता है। यह भले ही सत्य हो कि वह ऐतिहासिक सामाजिक जीवन हमारे इस युग के सर्वथा अनुरूप और अनुकूल न प्रतीत होता हो तिस पर भी हम उससे परिचय प्राप्त करके बहुत कुछ प्रस्तुत और अप्रस्तुत ढङ्ग से लाभान्वित हो सकते हैं। उस काल-विशेष की जिसका कि कथानक है सभी बातें इस युग में बिल्कुल ग्रहण करने योग्य न हों ऐसी बात नहीं है। यह भले ही उस काल-विशेष के वातावरण के अनुकूल होने पर भी वर्तमान काल की कथित मर्यादाओं के अनुकूल न हो लेकिन बहुत कुछ उपदेशमूलक हो सकता है। कुछ प्राचीन मान्यताओं को अग्राह्य मानकर छोड़ देने पर भी उस अतीत की गौरवमयी परम्परा को साथ लेकर चलने पर ही हमारा वास्तविक कल्याण वर्तमान काल में सम्भव है। एक प्रकार से यदि देखा जाय तो ऐतिहासिक उपन्यास वर्तमान युग के आधुनिक समस्यामूलक उपन्यासों की अपेक्षा अधिक मनोरञ्जक और सुधारमूलक होते हैं और इन उपन्यासों का अध्ययन निश्चित रूप से आधुनिक सामाजिक समस्याओं का हल प्रस्तुत करते हुए उचित मार्ग का अवलोकन वर्तमान समस्यामूलक उपन्यासों से कहीं अधिक करता हुआ दिखाई पड़ता है। उपन्यासकार का व्यक्तिगत सन्देश ही उसका विशेष उद्देश्य उसके उपन्यासों में होता है। सामाजिक, राजनीतिक उपन्यासकार अधिकतर वादों के चक्कर में पड़ कर अपनी औपन्यासिक प्रतिभा को कुण्ठित कर देता है और इन वादों को प्रतिपादित करने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देता है। यह उसका दुराग्रह मात्र आभासित होता है। इसी के विपरीत ऐतिहासिक उपन्यासकार प्रायः किसी सिद्धान्त का प्रचारक बनकर सामने नहीं आता, वह किसी ऐतिहासिक घटना के द्वारा तात्कालिक घटना का चित्रण मात्र कर देता है। उन चरित्रों तथा घटना से जो सहज सन्देश पाठक को प्राप्त हो

सकता है उसे पाठक आसानी से ग्रहण कर ले इतना ही वह अपना लक्ष्य रखता है। समाज के प्रति अत्यन्त जागरूक हो जाने पर वह अपने अतीत गौरव की झाँकी दिखलाते हुए कभी-कभी अपने युग के साथ सामञ्जस्य जोड़ने का प्रयत्न करता है।

जिस उपन्यास में इतिहास का आधार ठोस होता है उसमें कला पक्ष का निखार उतना ही खिल करके सामने आता है। यही कारण है कि श्री वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यास अत्यधिक सफल कहे जा सकते हैं। इनमें ऐसे पात्रों का चित्रण करना पड़ा है जो कि प्रायः विलुप्त हैं और जिनके बारे में केवल कुछ प्रमाण मात्र मौजूद हैं। इनके साथ खेलवाड़ करना कभी भी उचित नहीं है। इसके बारे में महा-पण्डित राहुल सांकृत्यायन का मत है कि 'ऐतिहासिक उपन्यासों में हमें ऐसे समाज और उसके व्यक्तियों का चित्रण करना पड़ता है जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है। किन्तु उसने पद-चिह्न कुछ जरूर छोड़े हैं, जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते'।[1] जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि उपन्यासकार को ऐतिहासिक यथार्थ की ओर चलने के लिए अत्यन्त सावधान होकर चलना पड़ता है। किसी भी युग-विशेष की वास्तविकता और वस्तु-स्थिति को साफ समझ लेना ही ऐतिहासिक यथार्थ है। यथार्थवादी साहित्य का मूल उद्देश्य यही होता है कि वह निष्पक्ष भाव से समाज के हित में तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वहाँ के 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' का रूप चित्रित किया जाता हो, अपितु वर्ग-भेद के कारणों एवं उनके सम्बन्धों का निष्पक्ष रूप से विवेचन करके समाज के हित का रूप प्रस्तुत करने

---

१. राहुल सांकृत्यायन—उपन्यास अंक, पृष्ठ—१७०।

का प्रयत्न करे। मार्क्स ने इतिहास का निष्पक्ष और गहन अध्ययन करके यही तथ्य और निष्कर्ष निकाला कि समाज का भी द्वन्द्वात्मक विकास होता है। दो के संघर्षों से तीसरा जन्म लेता है। यही कारण है कि मार्क्स ने समाज को प्रकृति के साथ संघर्ष करने को कहा। जो साहित्य समाज को निरन्तर प्रकृति के लिए एक आदर्श रूप निरूपित करने के लिए प्रयत्न करता रहता है अथवा जो समाजोत्थान की भावना को निरन्तर अपने साहित्य की प्रत्येक पंक्ति में रक्खे रहता है वही युग का महान साहित्य होता है। डा० रांगेय राघव का मत है कि 'कला मनुष्य की सामूहिक क्रियाओं की वह अनुभूति है, जो अपने सुख-दुःख तथा श्रम को हल्का करने के लिए बनाई गई थी। प्रत्येक युग में उसकी अनुभूति का स्वरूप बदलता है और कला भी बदलती रही है।'[1] प्राचीन काल का सामाजिक यथार्थ ही वर्तमान काल का ऐतिहासिक सत्य है। और जो साहित्य द्वारा प्रचार होता है वह उस काल-विशेष के वास्तविक तथ्य को उसी रूप में निरूपित करना मात्र है। जितना साहित्यकार उस तथ्य की वास्तविकता के निकट होगा उतनी ही सरलता से वह उक्त चित्र प्रस्तुत करके समाज को प्रवाहित करने में सफल होगा। हिन्दी में सफल ऐतिहासिक उपन्यासों का सर्वथा अभाव है। बंगला में राखाल बाबू के ऐतिहासिक उपन्यास उत्कृष्ट कोटि के हैं। इनके उपन्यासों में काल-विशेष का सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण का जिस प्रकार का चित्र चित्रित हुआ है वैसा हिन्दी के शायद ही किसी उपन्यास में प्राप्त हो। जिस प्रकार बंकिम चन्द्र के 'आनन्द मठ' को पढ़ने पर राष्ट्रीयता और आत्म-बलिदान की भावना लोगों के मानस-पटल को आलोडित कर देती है वैसा शायद और किसी उपन्यास को पढ़ने पर नहीं।

---

१. डा० रांगेय राघव—'आलोचना'—अप्रैल, १९५२।

उपन्यासकार का उद्देश्य साहित्यिक प्रगति के साथ ही साथ पाठकों के ज्ञान की वृद्धि एवं उस काल-विशेष की सामाजिक स्थिति, समस्याएँ और उसके निराकरण के मार्ग बताना, जिसके कारण वर्तमान समाज प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सके, होता है। इसी के लिए उपन्यासकार अथक परिश्रम करता है एवं इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। उपन्यास का प्रभाव उतना ही अधिक पाठक पर पड़ेगा जितनी कि उपन्यासकार में प्रतिभा होगी। ऐतिहासिक उपन्यास के मूल में क्या उद्देश्य है इसकी विवेचना करना अत्यावश्यक है। यह जानना नितान्त आवश्यक है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहासकार नहीं है। वह केवल इतिहास के तथ्यों को लेकर उपन्यास का सर्जन करता है। इतिहासज्ञ इस तथ्य को मानने के लिये तैयार हैं कि इतिहास में राजनीतिक पहलू की जितनी प्रधानता है उतनी ही उस काल-विशेष की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलू की भी है। लेकिन इन पहलुओं पर ऐतिहासिक उपन्यासकार का ध्यान इतिहासकार से अधिक मात्रा में माना गया है। समाजोद्धार की प्रेरणा के वशीभूत होने के कारण ही ऐतिहासिक उपन्यासकार को अत्यन्त जागरूक होना पड़ता है और यही कारण है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार और ऐतिहासिक उपन्यास दोनों की संख्या हिन्दी साहित्य में अत्यधिक न्यून है। भारतीय जागरण और आंग्लों के भारत को छोड़ने को बाध्य करने में हमारे राजनीतिक नेताओं से अगर ज्यादा नहीं तो किसी भी हालत में साहित्य का हाथ कम नहीं है। अर्थात् साहित्य भी स्वतन्त्रता-प्राप्ति में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ था। भारत की प्राचीन गौरवमयी गाथा का चित्र ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने प्रस्तुत करके जनता के भीतर राष्ट्रीय जागरण की भावना को जागृत किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे साहित्य के मूल में जनहित, राष्ट्रहित और 'सर्वे सुखिनः सन्तु' की भावना

किसी न किसी रूप में झाँकती हुई हमारे सामने आती है। चाहे वह किसी भी प्रकार का साहित्य क्यों न हो, लेकिन वह साहित्य तभी गिना जायगा जब कि उसमें 'सहितस्य भाव' रहेगा। इस प्रकार अगर हम देखें तो यह पता चलेगा कि ऐतिहासिक उपन्यासों के मूल में वर्तमान समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने के लिए प्रेरित करने के भाव एवं उद्देश्य का शुद्ध, स्वच्छ, अविरल स्रोत अबाध गति से प्रवाहित होता हुआ स्पष्टरूपेण परिलक्षित होता है।

२—तथ्यों की कल्पना और सामाजिक रोमांस:—

हिन्दी साहित्य में कोई सीमा निर्धारित करना पहाड़ पर कुआँ खोदने के प्रयास के समान होगा। हिन्दी के कुछ उच्चकोटि के उपन्यास जिनका परित्याग असम्भव है वह उपन्यास साहित्य की कसौटी पर निश्चित ही खोटे उतरेंगे। ऐसे भी उपन्यास हिन्दी में उपलब्ध हैं जिनमें ऐतिहासिक तथ्य नाम की वस्तु का रंच मात्र भी प्रवेश नहीं है, लेकिन कथा-वस्तु के सर्जन में इस प्रकार का वातावरण उपस्थित किया गया है कि ऐतिहासिक भ्रम अनायास ही उत्पन्न हो जाता है और पाठक-समुदाय उसे ऐतिहासिक उपन्यास मान बैठता है। निष्पक्ष भाव से अगर इसका अवलोकन किया जाय तो हम कह सकते हैं कि हिन्दी में प्राप्त प्रायः सभी ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के प्रमुख पात्रों और घटनाओं को लेकर काल्पनिक कथानक रूपी महल खड़ा करना चाहते हैं, और कुछ में ऐतिहासिक वातावरण मात्र, और अन्य उपन्यासों में एक दो पात्र ऐतिहासिक लेकर कल्पना की दौड़ निरन्तर लगाया करते हैं। कुछ इस प्रकार के भी उपन्यास उपलब्ध हैं जिनके न तो पात्र ही ऐतिहासिक हैं और न उनकी कथा ही। इस प्रकार की समस्या अगर हम हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों को वर्गीकृत करने का प्रयास

करें तो सामने व्यवधान के रूप में खड़ी हुई मिलेगी। अन्तिम समस्या का जो उल्लेख किया गया है उस कोटि के अन्तर्गत हिन्दी के दो प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१—'विराटा की पद्मिनी'	श्री वृन्दावन लाल वर्मा
२—'चित्रलेखा'	श्री भगवती चरण वर्मा।

उपर्युक्त उपन्यासों की विस्तृत विवेचना करने पर उपर्युक्त तथ्य स्पष्ट-रूपेण दृष्टिगत हो सकेगा।

विराटा की पद्मिनी :—

इस उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण को लेकर एक मन को रमाने वाली स्वतन्त्र कथा को प्रस्तुत किया गया है। इसमें कुछ पात्रों के नाम तो ऐसे हैं जो ऐतिहासिक हैं, लेकिन इनको अगर ऐतिहासिक मान लिया जाय तो सम्पूर्ण उपन्यास छोटा हो जायगा। अनेक कालों की घटनाओं को एक ही में मिलाने के प्रयास का दोष सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इस उपन्यास का कथानक तथाकथित ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर है जो कि इतिहास में वर्णित नहीं हैं। इनके संपूर्ण कथानक का आधार जनश्रुति ही है। वर्मा जी ने 'विराटा की पद्मिनी' की भूमिका में स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है कि 'मैंने, विराटा की पद्मिनी, की कथा 'सुरतानपुरा' (परगना मौठ, जिला झाँसी) निवासी श्री नन्दू पुरोहित से सुनी।' इनके उपन्यासों में क्षेत्रीय मोह के कारण पात्रों का अतिरञ्जित चित्र प्रस्तुत किया गया है जिसके कारण ऐतिहासिक वातावरण की व्यवस्था ढीली हो गई है। जहाँ तक इतिहास का प्रश्न है यह उपन्यास किसी भी दृष्टिकोण से देखने पर ऐतिहासिक है ही नहीं। वर्मा जी के उपन्यासों की प्रमुख घटनाओं को संचालित करने का श्रेय उनके नारी पात्रों को ही है जैसे 'झाँसी की रानी' में

'लक्ष्मीबाई' और 'मृगनयनी' में 'मृगनयनी'। इस उपन्यास की प्रधान नायिका 'विराटा की पद्मिनी' है। इस उपन्यास का संपूर्ण कथानक उसी से संबंधित होकर निरन्तर अग्रसर होता है। भारत में मुसलमानों के सत्तारूढ़ होने के कारण सुन्दर हिन्दू बालिका ही भयंकर युद्ध का कारण बन जाती थी। यह एक ऐतिहासिक सत्य है। उसी प्रकार इस उपन्यास की कल्पित कहानी में इतिहास-समर्थित तथा कथित प्रसंगों का अधिक समावेश है। 'विराटा की पद्मिनी', जिसका वास्तविक नाम 'कुमुद' था, का जन्म एक योगी के घर में हुआ। अपने अलौकिक सौन्दर्य के कारण ही वह देवी का अवतार मानी जाने लगी। दिलीप नगर के राजा का दासीपुत्र 'कुञ्जरसिंह' का साक्षात्कार 'कुमुद' से हुआ और दोनों में साहचर्य-गत प्रेम जागृत हुआ। काल्पी का नवाब 'अलीमर्दान' भी 'कुमुद' को प्राप्त करने का प्रयास करने लगा। इन सभी लोगों के साथ ही साथ वृद्ध राजा 'नायक सिंह' भी अपनी कामुकता के वशीभूत होकर 'कुमुद' को प्राप्त करने के लिये सतत प्रयत्नशील था, जिसके फलस्वरूप 'अलीमर्दान' और 'नायक सिंह' में युद्ध हुआ। इसमें राजा के सगोत्र 'देवीसिंह' ने राजा की प्राण-रक्षा की जिसके पुरस्कारस्वरूप 'नायकसिंह' की मृत्यु के उपरान्त 'देवीसिंह' राज्य प्राप्त करने में सफल हुआ। 'कुञ्जरसिंह' विद्रोही हो गया। ऐसे समय में देवीसिंह को आन्तरिक विद्रोह और अलीमर्दान के साथ बाह्य-युद्ध करना पड़ा। इसी युद्ध में कुञ्जर सिंह मारा गया और कुमुद ने जलसमाधि ले ली। यही मुख्य कथानक है। कुञ्जर सिंह राज्य तो प्राप्त नहीं करना चाहता था लेकिन वह अलीमर्दान को इसलिए मारना चाहता था कि वह उसकी प्रेयसी कुमुद को प्राप्त करने के लिए हर तरह से प्रयत्न कर रहा था। कथा के स्वाभाविक प्रवाह और एकसूत्रबद्धता का बहुत ही उत्कृष्ट और सुन्दर उदाहरण इस

उपन्यास में प्राप्त होता है। इसमें एक सुन्दर ऐतिहासिक वातावरण का भी विज्ञ उपन्यासकार ने सर्जन करके चित्र चित्रित किया है। इसमें राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थिति को भी दिखलाने का प्रयास लेखक ने किया है। यह भारतीय इतिहास का वह समय था जब मुगलवंश का पतन होने के कारण समस्त उत्तर भारत छोटे-छोटे खंडों में विभाजित हो गया था और प्रत्येक राजा एक दूसरे के प्रति षड्यंत्र रचने के लिए एक न एक मार्ग ढूँढ़ा करता था और उसको कार्यान्वित करने के लिए निरन्तर प्रस्तुत रहता था। हिन्दू राजाओं की वैसी स्वतंत्र स्थिति नहीं थी जैसी कि मुसलमान नवाबों की थी। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने 'नायक सिंह' को उतना ही स्वतंत्र दिखलाया है जितना 'अलीमर्दान' को। जहाँ तक उत्तराधिकार-संबंधी नियम थे वे प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरूप थे। कहने का तात्पर्य यह है कि दासीपुत्रों को उस काल में राज्याधिकार नहीं प्राप्त था। इसी से वे पात्र प्राचीन वर्ण-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने का सतत प्रयत्न कर रहे थे। यह उपन्यास ऐतिहासिक वातावरण में रचित ऐतिहासिक रोमांस मात्र है। इसमें लेखक ने 'कुमुद' के अनुपम रूप और लावण्य से प्रेरित होकर ही रोमांस की चर्चा की है। इसमें 'कुञ्जर सिंह' आदि से अन्त तक 'कुमुद' का कृपापात्र बना रहता है एवं कुमुद का यह स्नेह और प्यार इस उपन्यास की मारकाट के बीच कथा का सूत्र बना रहता है। इसमें प्रारम्भ में भले ही कुञ्जर सिंह जो कुछ भी रहा हो अन्त में वह शुद्ध प्रेमी ही रह जाता है। वह अलीमर्दान का हितैषी होने पर भी इसलिये उसे शत्रु समझता है कि वह 'पद्मिनी' पर कुदृष्टि रखता है। वह प्रेम की वेदी पर अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार है तथा साथ ही साथ प्रेम की देवी की मर्यादा का पूर्णरूपेण ध्यान रखता हुआ अन्त तक उसका पालन करते हुए दिखलाई देता है। वह वीर, साहसी

और प्रतापी योद्धा है। इन गुणों के कारण ही जिसके चरणों पर सारा जमाना लोटता था उस पत्थर के समान मूर्तरूप कुमुद के भी हृदय ने पिघल कर प्रेम-नदी का रूप धारण कर लिया। इस तथ्य में रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं है कि अगर युद्ध का परिणाम कुञ्जर सिंह के अनुकूल होता तो कुमुद का उदात्त यौवन कुञ्जर के आलिङ्गन पाश में आबद्ध होता। यह रोमांस कुमुद और दिलीप नगर के अधिकारच्युत दासी-पुत्र कुञ्जर के बीच का है। इस उपन्यास के भीतर प्रेम सम्बन्ध का ही सूत्र निरन्तर कार्य करता हुआ दिखलाई पड़ता है। रचना की दृष्टि से यह ऐतिहासिक उपन्यास रोमांस मात्र होने पर भी अत्यन्त कलात्मक और मनोरञ्जक है।

चित्रलेखा:—

प्रस्तुत उपन्यास समाज के सामने एक समस्या को उपस्थित करते हुए दिखाई पड़ता है। इसका इतना व्यापक प्रभाव है कि अध्येता अपने अध्ययन के आवेश में इसके वाग्जाल में फँसकर परम्परा-गत मान्यताओं को भूलकर प्रस्तुत उपन्यास में वर्णित समस्या के निराकरण को ही सत्य मान लेता है। इस उपन्यास की वास्तविक समस्या 'पाप क्या है और उसका निवास कहाँ है' यही है। इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए यह कहा गया है कि 'परिस्थितियों के आवर्त में कुमारगिरि का संयम स्खलित होता है, उसका गर्व खर्व होता है और परिस्थितियों के प्रभाव में ही भोगी बीजगुप्त महान त्यागी बन जाता है'।[1] यह उपन्यास सोद्देश्य लिखा गया है जिसके कारण घटनाएँ पूर्व-नियोजित और सुनिश्चित हैं। यह उपन्यासकार की प्रतिभा के कारण सरस नहीं हुआ है बल्कि एक अभूतपूर्व और सुन्दरी नारी के

---

१. हिन्दी उपन्यास—शिव नारायण श्रीवास्तव।

चरित्र से सम्बन्धित होने के कारण सरस हो गया है। उपन्यासकार ने एक जगह स्वयं लिखा है कि 'चित्रलेखा में एक समस्या है, मानव-जीवन के तथा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों के देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है'।[1] इस प्रकार लेखक का यह कहना उसके दम्भ को प्रदर्शित करता है, क्योंकि किसी एक व्यक्ति के दृष्टिकोण को संपूर्ण समाज मान ले यह कहाँ तक उचित है, उसे स्वयं श्री भगवती चरण वर्मा जी अपने मन से पूछकर देखें। इसीलिए एक जगह पुण्य की परिभाषा देते हुए महाप्रभु रत्नाम्बर ने कहा है कि 'संसार में पाप कुछ भी नहीं है। न हम पाप करते हैं और न पुण्य। हम वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है'।[2]

चित्रलेखा को पढ़ने के उपरान्त एक विज्ञ पाठक यह आसानी से समझ सकता है कि इसको पढ़ने के उपरान्त इस उपन्यास के प्रति रूढ़िवादी भारतीय के हृदय में जुगुप्सा का जागृत होना अत्यन्त ही स्वाभाविक है। क्या यह कभी संभव है कि कुमारगिरि ऐसा योगी जिसने कि संसार की समस्त वासनाओं पर पूर्णरूपेण अधिकार प्राप्त कर लिया है वह जब चित्रलेखा जैसी अद्वितीय रूपवती नर्तकी को अपने आश्रम में देखता है तो उसकी सब जितेन्द्रियता एक क्षण में उड़ जाती है और वह उस नर्तकी के आलिंगन पाश में बँध जाने के लिए लालायित हो उठता है। यह भारतीय योगवाद और आत्मवाद की हँसी नहीं तो क्या है। वर्मा जी ने मानव-जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि मानव-जीवन का विकास परिस्थितियों से नित्य संघर्ष को करते हुए अगर विकसित होता है तभी वह श्रेष्ठ होता है न कि परिस्थितियों से दूर हटकर। जो व्यक्ति परिस्थितियों के बीच से विकसित होकर उच्चता को प्राप्त होता है वह पतन के गर्त में नहीं गिर

१. चित्रलेखा—भगवती चरण वर्मा।

२. चित्रलेखा—भगवती चरण वर्मा। पृष्ठ–७।

सकता, जब कि इसी के विपरीत व्यक्ति सांसारिक परिस्थितियों और वासनाओं से दूर हटकर उनसे भागा-भागा फिरता है और आकस्मिक और अनायास रूप में अगर वह उन परिस्थितियों और वासनाओं के चक्कर में अगर किसी भी रूप से आ गया तो वह पतन के गर्त में गिरने से अपने को सम्हालने में अशक्त पाकर पतन के गर्त में गिर पड़ता है और वहाँ से उठना उसके लिए अगर असंभव नहीं तो असाध्य तो है ही। यही स्थिति कुमारगिरि की थी। उपन्यासकार की दृष्टि में कुमारगिरि परिस्थितियों से भागे हुए व्यक्ति के रूप में आता है। वह नारी से इतना घबड़ाता है कि नारी के निकट नहीं जाना चाहता क्योंकि उसका सान्निध्य प्राप्त करने पर वह अपनी दुर्बलता पर नियंत्रण रखने में असमर्थ है और उसकी यह दुर्बलता चित्रलेखा को प्राप्त करने पर प्रकट हो ही जाती है। लेकिन लेखक का मत इससे बिलकुल विपरीत है और चित्रलेखा के अनुसार 'स्त्री शक्ति है, वह सृष्टि है यदि उसे संचालित करने वाले व्यक्ति योग्य हों, वह विनाश है यदि उसे संचालित करने वाले व्यक्ति अयोग्य हों, इसलिए जो मनुष्य स्त्री से भय खाता हो वह या तो अयोग्य है या कायर।'[1] कुमारगिरि के पतन को देखकर लेखक यह दिखलाना चाहता है कि वासना की मूर्ति नारी से जो भयभीत होता है और वास्तविक जीवन से भाग जाता है उसका पतन ठीक उसी प्रकार से होता है जैसा कि कुमारगिरि का हुआ। जिस नारी की प्रतिच्छाया वह अपने आस-पास नहीं पड़ने देना चाहता था वही नारी को आलिंगन पाश में बाँधकर कहता है कि 'नर्तकी ! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।'

इसी का दूसरा अंश प्रस्तुत करते हुए लेखक बीजगुप्त को भोगी

---

१. चित्रलेखा—श्री भगवती चरण वर्मा।

सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील है, और इसी से उसके संपूर्ण जीवन को सुखमय और ऐशो-आराम से पूर्ण दिखलाया है। इसने संपूर्ण यौवन का पूर्ण आनन्द उठाया जब कि इसी के विपरीत अपने भोग काल में कुमारगिरि योगी हो गया था। इस उपन्यास में आध्यात्मिकता पर भौतिकता की विजय दिखलाई गई है। आज भोग को विरक्ति से भी अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है। इन्हीं दो बातों को ध्यान में रखकर उपन्यासकार ने मानव-जीवन-दर्शन के चित्र को चित्रित करने का प्रयास किया है। यह समस्याप्रधान उपन्यास होते हुए भी चरित्रप्रधान उपन्यास है। उपन्यासकार को 'अनातोले फ्रांस' का साहित्य बहुत ही प्रभावित करते हुए मालूम पड़ता है। पात्रों को प्रस्तुत करने का ढंग इनका अपना मौलिक प्रयास है। इसमें यह दिखाया गया है कि मानव की सहज इच्छाएँ बहुत समय तक बलपूर्वक नहीं दबाई जा सकतीं और इसके नियंत्रण में अधिक प्रयास किया गया तो वह अवसर पाते ही उस व्यक्ति का सर्वनाश कर देती है। चित्रलेखा के प्रथम प्रेम को प्राप्त कर उसको ठुकरा देने के कारण ही कुमारगिरि को उसके प्रेम का भिखारी बनना पड़ा जिसके कारण वह न तो स्वस्थ भोगी ही रहा और न शुद्ध योगी। अगर लेखक ने इस दुर्बलता का चित्र न चित्रित किया होता तो कुमारगिरि का अलौकिक व्यक्तित्व पाठकों के सामने दिग्दर्शित होता। कुमारगिरि का चरित्र एक योगी के पतन और दंभ की अत्यन्त ही कारुणिक कहानी है और बहुत ही नीरस भी है। बीजगुप्त चित्रलेखा को अपनी प्रेयसी के रूप में न देखकर पत्नी के रूप में देखता है इसलिए बीजगुप्त स्वयं स्वीकार करता है कि 'इसका नाम चित्रलेखा है और यह पाटलिपुत्र की सर्वसुन्दरी नर्तकी होते हुए भी मेरी पत्नी के बराबर है इसलिए तुम्हारी स्वामिनी हुई'।[1] यही कारण है कि इन दोनों

---

१. चित्रलेखा—भगवती चरण वर्मा।

के विवाह बन्धन में आबद्ध हो जाने पर भी वे निन्दा के पात्र नहीं बनते। जिस तत्व को कुमारगिरि अत्यन्त कठोर तपस्या करने पर भी नहीं प्राप्त कर सका उसको बीजगुप्त ने केवल मानसिक साधना के बल पर प्राप्त कर लिया।

चित्रलेखा का चरित्रचित्रण करने में उपन्यासकार ने मौलिकता का आश्रय लिया है। इसके भीतर नारी-सुलभ गुणधर्मों का अभाव नहीं है। उसका प्रेम बीजगुप्त के साथ पतिरूप में था। नर्तकी होते हुए भी 'जीवन के कठोर अनुभवों ने उसे संसार को परखने की सूक्ष्म दृष्टि दी थी। वह पाटलिपुत्र के युवकों के हृदय की गति है[1]।'

अब प्रश्न यह सामने आता है कि यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों में रखा जाय या नहीं? इसके उत्तर में केवल यही कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य, चाणक्य आदि ऐतिहासिक पात्रों के नाम हैं लेकिन उनका कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता। इसलिये केवल दो ऐतिहासिक नामों के आधार पर इसे ऐतिहासिक उपन्यास कहना युक्तियुक्त नहीं मालूम देता। प्रेमचन्दजी का मत है कि 'प्राचीन समय के नामों की कोई पुस्तक ऐतिहासिक नहीं होती। पुराने शिलालेख और ताम्रपत्र भी इतिहास नहीं हैं। इतिहास है किसी समय की भाषा और विचार को व्यक्त करना'।[2] यह उस काल का चित्रण है जिसमें नर्तकियों की मर्यादा आज की आधुनिक वेश्याओं से कहीं अधिक थी। यही कारण है कि जहाँ जिस रास्ते से 'चित्रलेखा' का रथ निकल जाता था वहाँ की जनता पुष्पादि के द्वारा उसका स्वागत करने को तत्पर रहती थी। इसमें प्राचीनतम नगरी काशी की महत्ता

---

१. हिन्दी उपन्यास–शिवनारायण श्रीवास्तव।

२. प्रेमचन्द–'अनातोले फ्रान्स' की 'थाया' के अनुवाद की भूमिका।

भी प्रदर्शित की गयी है । इसी से किसी ने काशी नगरी के बारे में उक्त श्लोक कहा है :—

'पुष्पेषु चम्पा नगरेषु काशी,
काव्येषु माघः कवि कालिदासः ।'

इस उपन्यास में आधुनिकता के होते हुए भी अतीत की गोद में पाठक को भुलाए रखने की क्षमता है । यह उपन्यास, जैसा कि ऊपर कहा गया है, भले ही ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अवतरित किया गया हो लेकिन यह पूर्णरूपेण सामाजिक ऐतिहासिक रोमांस है ।

भूमिका में नारी पात्र :—

यह सर्वविदित सत्य है कि मानवता के मूल में नारी है । इससे समाज को प्रेरणा, शक्ति, तुष्टि, प्रेम और सृष्टि आदि सभी कुछ प्राप्त होता है । एक प्रकार से नारी का विकास सभ्यता का विकास कहा जा सकता है । सामाजिक विकास से नारी को हम अलग नहीं कर सकते और न इसके बिना विकास सम्भव है । हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने उनमें वर्णित नारी के चित्र को तत्कालीन परिस्थिति और वातावरण का चित्र माना है । उपन्यास साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या न्यून है और ऐसे बहुत कम उपन्यास हैं जिनमें यथासमय तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था हो सके । एक बात ध्यान रखने योग्य है कि हिन्दी साहित्य में प्राप्त प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास के मूल में नारी पात्रों की ही प्रधानता है, जैसे झाँसी की रानी, विराटा की पद्मिनी, वैशाली की नगरवधू, दिव्या, चित्रलेखा आदि । इन उपन्यासों में नारी को चित्रित करने के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण लेखक के थे । कुछ उपन्यासों में शोभायुक्त नारीत्व की ही चर्चा केवल वीरपूजा के भाव से करने पर

उसमें स्वाभाविकता का अभाव और यशोवर्धन की प्रधानता रह जाती है। ऐसे समय में उपन्यासकार नारी का चित्र चित्रित न करके शक्ति, दुर्गा आदि का रूप प्रस्तुत करने में ही सफल हो पाता है। इसका उदाहरण 'झाँसी की रानी' है। नारी के इतिहासप्रसिद्ध रूप का वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, वह स्वतः वर्णित है। जिस नारी पात्र के विकास में समाज का सहयोग है वही उत्कृष्ट पात्र होता है। 'वैशाली की नगरवधू,' 'दिव्या,' 'विराटा की पद्मिनी' और 'चित्रलेखा' ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनके भीतर भारत के उन कालों का चित्रण किया गया है जिनमें बहुत ही क्रान्तिकारी, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक उथल-पुथल हुई। एक में बुद्ध के समय के समाज का चित्रण है, दूसरे में उनके निर्वाण काल के समय का, तीसरे में मुगल साम्राज्य के लड़खड़ाते हुए समय के समाज का एवं चौथे में चन्द्रगुप्त काल के समृद्ध भारत का चित्र प्रस्तुत है। इन सब तथ्यों को ठीक रूप से संजोकर रखने का प्रयास उपन्यासकार के लिए अग्नि-परीक्षा के समान होता है। इस प्रकार की कठिनाइयों का सामना अन्य उपन्यासकार नहीं कर सकता और न अपने को उसकी आवश्यकता ही पड़ती है।

उपर्युक्त चारों उपन्यासों में जो प्रमुख नारी पात्र आये हैं उनके भीतर स्वर्णसुलभ रूप-आकर्षण प्रत्येक में बराबर भाग में है। सारी कथा का विकास अगर निष्पक्ष रूप से देखें तो कहा जा सकता है कि वह इसी रूपाकर्षण के कारण ही होता है। इन नारी पात्रों में रूपाकर्षण का इतना प्राबल्य है कि वे अपने समाज को पूर्ण रूप से प्रभावित करने में शक्त हैं और यही कथानक का रूप देकर उपन्यास में प्रकट किया गया है। इन उपन्यासों के प्रत्येक पात्र के भाग्य-परिवर्तन और अपने मनोनुकूल प्रेमी को प्राप्त करने में असफल होने

का एक मात्र कारण उनका अत्यन्त लावण्यवती होना ही है। जैसे 'अम्बपाली' का अपने मनोवांछित पति को प्राप्त न करके 'नगरवधू' बनना, 'दिव्या' का श्रेष्ठिपुत्र 'पृथुसेन' को गणराज्य के नियमों के अनुसार पति रूप में न प्राप्त कर सकना। 'अम्बपाली' और 'दिव्या' में केवल मौलिक अन्तर इतना ही है कि अम्बपाली के सामने उसका रूप बाधक सिद्ध हुआ जब कि इसी के विपरीत दिव्या के बीच उसका रूप और समाज दोनों आ गया है। यह स्थिति चित्रलेखा और कुमुद की नहीं थी। कुमुद और कंजर सिंह का प्रेम मौलिक धरातल से उठकर अलौकिक धरातल पर है। इसलिए 'कुमुद' की उपर्युक्त तीनों नारी पात्रों के साथ व्याख्या करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। 'चित्रलेखा', 'दिव्या' और 'अम्बपाली' की मानसिक स्थिति प्रायः एक है। पूरे उपन्यास का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि अम्बपाली ने अपने रूप, यौवन और कामनाओं की बाजी सामाजिक परिस्थितियों की बलिवेदी पर लगा दी। 'दिव्या' भारतीय नारी के वास्तविक प्रतिनिधि-स्वरूप सामने आती है, जिसने संघर्षों के बीच अपने जीवन का निर्णय किया है। यह भले ही सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में सफल तो नहीं होती लेकिन उससे हार मानने को वह तैयार नहीं है और न वह जल्दी हार मानती ही है। 'चित्रलेखा' स्वतंत्र नारी होने के कारण अपनी दृढ़ता के बल पर अपने समाज का अपने आप निर्णय करती है। इसके भीतर आकर्षण नाम की वस्तु कहीं भी ठीक रूप से दिखाई नहीं पड़ती। इसका जो कुछ भी आकर्षण जिस किसी के प्रति भी है वह आकर्षणजन्य न होकर प्रतिक्रियाजन्य ही मालूम पड़ता है। तीनों नृत्यकलाविद् हैं लेकिन तीनों के कालक्रम में अन्तर हैं। इन तीनों के चित्र के साथ ही साथ तीन प्रकार के समाज का चित्र चित्रित हुआ है। प्राचीन काल में वेश्याओं की स्थिति आज के

समान नहीं थी। उस काल में तीन कोटि की वेश्याओं का चित्र प्रस्तुत किया गया है (१) राजनर्तकी (२) गणिका (३) वेश्या। 'दिव्या' में प्रधान गणिका मल्लिका गणिका न थी, वह 'राजनर्तकी' थी और इसका सम्मान इसके कलाज्ञान के कारण था। 'अम्बपाली' गणिका थी। यह गणराज्य की सबसे अधिक सम्मान्य नारी थी और अपनी सुन्दरता के कारण 'नगरवधू' बनाई गई थी। 'चित्रलेखा' न तो गणिका थी और न राजनर्तकी। लेकिन वह वेश्या थी। इसका केवल सामाजिक सम्मान था, राजकीय नहीं, जैसा उपर्युक्त नर्तकियों को प्राप्त था। तिस पर भी उसकी स्थिति आज के समान वेश्याओं की तरह नहीं थी। उसका रथ जिस मार्ग से गुजर जाता वहाँ के लोग उसका स्वागत करने को कटिबद्ध रहते थे। इसमें जनता की कलाप्रियता और चित्रलेखा के वैयक्तिक गुण थे। दिव्या में उसका परिवार, धर्म-पुरुषाश्रय तथा पुरुषभोगता आदि के प्रति विद्रोह ही स्पष्ट लक्षित होता है। इन सबों से ऐसा भान होता है कि इसके चरित्र के विकास की आड़ में जितना सामाजिक वातावरण और ऐतिहासिक सत्य को प्रत्यक्ष रूप में रखा गया है वह 'अम्बपाली' और 'चित्रलेखा' के माध्यम से लाने में उपन्यासकार किसी भी प्रकार सफल नहीं हो पाए।

उपर्युक्त उल्लिखित उपन्यासों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट आभासित होती है कि प्रत्येक उपन्यासलेखक अपने नारी पात्रों को मूल में रखकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थिति का सफल चित्रण उनके ही चारों ओर कथानक को रखकर करते हुए वातावरण का इस प्रकार से सर्जन करता है जो कि मनोहारी होता है और इसमें उपन्यासकार अत्यधिक सफल हुआ है। साथ ही साथ नारी पात्रों की प्रधानता के कारण ही यह उपन्यास और भी अधिक रोचक और मनोग्राही होने में सफल हो सका है। जिन उपन्यासों के मूल में

उपन्यासकार नारी पात्रों का सफल चित्रण करने में सफल हो सका है वैसे उपन्यास बहुत ही चित्ताकर्षक और समाज को आदर्श की ओर अग्रसर करने में बहुत ही सफल होते हैं। इस प्रकार के सन्देशप्रद और आदर्शोन्मुख ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी-साहित्य में अत्यल्प हैं। इस प्रकार उपन्यासलेखक ऐतिहासिक भूमिका में नारी पात्रों को रख कर और उनको कथानक का केन्द्र बनाकर सामाजिक यथार्थ के चित्रण में बहुत ही अधिक सफल हुआ है और अपने मूल उद्देश्य को बड़ी ही आसानी और सरसतापूर्वक प्रतिपादित कर दिया है।

आठवाँ अध्याय

अपूर्ण और अनूदित ऐतिहासिक उपन्यास

क—हिन्दी के तीन अधूरे ऐतिहासिक उपन्यासः—

हिन्दी गद्य साहित्य में उपन्यासों का अधिक विकास होने पर भी ऐसे उच्चकोटि के उपन्यास नहीं प्राप्त होते जो कि विश्व-साहित्य के बीच प्रस्तुत किए जा सकें। इसका मतलब यह नहीं कि हिन्दी में अच्छे उपन्यास उपलब्ध नहीं हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों का विशेष अंग हिन्दी साहित्य में एक प्रकार से अस्पृश्य सा रहा है। ऐसी स्थिति में उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों का हिन्दी में होना अगर असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। श्री वृन्दावन लाल वर्मा के कुछ उपन्यास ऐसे उपलब्ध होते हैं जो कि साहित्य की श्रीवृद्धि में अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं। हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसे अप्राप्य और अज्ञात अपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनका कि अपना विशिष्ट स्थान है। हिन्दी साहित्य में ऐसे उत्कृष्ट कोटि के उपन्यासों की उपलब्धि होती और वे हिन्दी के गौरव को उच्चता के उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठित करने में अत्यन्त ही सहायक सिद्ध होते, अगर वे किसी भी प्रकार से पूर्णता को प्राप्त हो गए होते। यह तो हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य था कि इस

प्रकार के उच्चकोटि के उपन्यासों का बीजारोपण तो हुआ लेकिन काल के कठोर और कराल झंझावात के कारण वह अपनी शैशवावस्था में टूट गया। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के उपन्यासों के लिखने का प्रयास उच्चकोटि के उपन्यासकारों ने किया लेकिन इनमें से कुछ को काल के कठोर हाथों ने संसार से उठा लिया जिसके कारण हिन्दी का यह विशेष साहित्यांग श्रेष्ठतम उपन्यासों के द्वारा अपने भण्डार की पूर्ति नहीं कर सका और कुछ अन्य उपन्यासकारों ने कुछ विशेष कारणों के वशीभूत होने के कारण उस उत्कृष्ट रचना को पूर्ण करने में अपने को असमर्थ और अशक्त पाया। इस प्रकार के अपूर्ण किन्तु कला की दृष्टि से उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास संख्या में तो अधिक नहीं हैं और अपूर्ण होने के कारण भले ही इनकी महत्ता आलोचकों के सम्मुख कुछ भी न हो लेकिन साहित्य की दृष्टि से इनका अपना अलग ही स्थान है। इस प्रकार के अपूर्ण और प्रमुख उपलब्ध ऐतिहासिक उपन्यास केवल तीन हैं, और वे निम्नलिखित हैं:—

१. समुद्रगुप्त—श्री राखालदास वन्द्योपाध्याय।

२. इरावती—बाबू जयशंकर प्रसाद।

३. चन्द्रलेखा वियोगिनी—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

ये तीनों अपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि हैं। ये उपन्यास किसी कारणविशेष के कारण ही पूर्ण नहीं हो पाए। प्रथम दो समुद्रगुप्त और इरावती अब तो किसी भी हालत में पूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि इनके ख्यातिप्राप्त लेखक इस असार संसार से ऊपर उठ गए। यह प्रसन्नता की बात है कि 'चन्द्रलेखा वियोगिनी' के ख्याति-प्राप्त लेखक आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी इस ग्रन्थ को पूरा करने के लिए कटिबद्ध हैं और आशा है कि यह अनमोल ग्रन्थ शीघ्रातिशीघ्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जायगा। ऐसा करने पर हिन्दी के ऐति-

हासिक उपन्यास साहित्य की पूर्णता यह कुछ अंशों तक पूर्ण करेगा। इस उपन्यास के ग्रन्थाकार रूप में आने पर यह उपन्यास क्षेत्र में चार चाँद लगा देगा। हिन्दी जगत् इस उपन्यास की अत्यन्त उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहा है। इन उपर्युक्त उपन्यासों की अपूर्ण कथावस्तु की किसी ने भी आलोचना नहीं की है। ऐसी स्थिति में इसकी आलोचना करने का साहस करना दुस्साहसमात्र ही होगा। इसलिए अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों की जिस प्रकार से गवेषणात्मक आलोचना की गई है उसी को कसौटी मानकर अगर इन उपन्यासों की आलोचना की जाय तो इनकी उत्कृष्टता का आभास स्पष्ट दिखाई पड़ेगा। ये उपन्यास हिन्दी साहित्य में अपूर्ण होने पर भी आने वाली नूतन पीढ़ी को नवीन मार्ग प्रदर्शित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होंगे।

समुद्रगुप्त :—

स्वर्गीय राखालदास वन्द्योपाध्याय बंगाल के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता थे एवं बंगला साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार थे। इन्होंने अपने संपूर्ण जीवन भर सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे लेकिन इनके सब उपन्यास प्रायः बंगला भाषा में थे। इन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा को अन्य लोगों तक पहुँचाने की भावना से प्रेरित होकर अपने जीवन के अन्तिम समय में हिन्दी भाषा में 'समुद्रगुप्त' नामक उपन्यास को लिखने का प्रयत्न किया। वे इस उपन्यास को प्रायः दस अध्याय तक निर्बाध गति से लिख भी गए और आपने इसे शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने का भी प्रयत्न किया लेकिन मानव दैवबलाधीन होने के कारण अपने प्रयास में जिस प्रकार सफल नहीं होता ठीक उसी प्रकार इस उपन्यास को पूरा करने का स्वप्न राखाल बाबू देखते हुए इस संसार से सदा के लिए उठ गए और यह उपन्यास इसी प्रकार

अधूरा का अधूरा ही रह गया। इसका कथानक गुप्तकाल और चक्रवर्ती सम्राट् समुद्रगुप्त के राजनैतिक जीवन से संबंधित है। इसमें के प्रायः सभी पात्र इतिहास-सम्मत और पूर्णरूपेण इतिहास के प्रमाणों के ऊपर आधारित हैं। इसमें वर्णित घटनाएँ भी इतिहासप्रसिद्ध घटनाएँ हैं। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके पात्र और घटनाओं के ऐतिहासिक होने पर भी इसके कथानक में कहीं भी व्यतिक्रम एवं शुष्कता नहीं आने पाई है। उपन्यासकार ने इतिहासज्ञ होने पर भी कथानक को शुष्क होने से बहुत कुछ बचाया है किन्तु कहीं-कहीं पर इतिहास के लोभ को संवरण न कर सकने के कारण उसने कथानक के शुष्क होने की परवाह किए बिना लम्बे इतिहास-प्रेरित संवादों को जबरदस्ती घुसेड़ दिया है। इसमें कल्पना के अंश की न्यूनता भी है। इसे ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर अगर यह कहा जाय कि यह केवल समुद्रगुप्त के जीवनचरित्र को इतिहास के तिथियों के चौखटे में न कसकर केवल साहित्यिक भाषा में वही चीज लिखी गयी है तो कोई विशेष भेद नहीं मालूम पड़ता है। फिर भी यह उपन्यास अगर पूर्ण हो गया होता तो यह हिन्दी के लिए एक अमूल्य कृति हो जाती। यह शायद दैव को न मंजूर था।

इरावती :—

हिन्दी में मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास नहीं के बराबर हैं। इसी कारण प्रसाद जी, जो कि ऐतिहासिक नाटककार थे, अपने क्षेत्र को छोड़कर इस क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए कटिबद्ध हुए और 'इरावती' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास को भी काल के कठोर हाथों ने पूर्ण नहीं होने दिया। इसके बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि अगर यह उपन्यास किसी भी प्रकार पूर्ण हो गया होता

तो हिन्दी साहित्य भी गर्वपूर्वक दूसरी भाषाओं के समक्ष, जिनमें उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास होते हैं, अपनी भी एक चीज इस कृति के रूप में रख सकता था।

प्रसाद जी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को लेकर एक नूतन मोड़ हिन्दी उपन्यास साहित्य के अन्दर लाए। वैसे तो प्रसाद जी ने कहानीकार और ऐतिहासिक नाटककार के रूप में ख्याति प्राप्त की थी लेकिन सामाजिक यथार्थ को लेकर ये उपन्यासकारों की श्रेणी में अग्रणी हो गए। इन्होंने इतिहास की विवेचना करते हुए भारत के गौरवमय अतीत के उन तथ्यों को चुन-चुनकर अपने साहित्य में एकत्रित किया जिनके द्वारा उनका साहित्य सार्वकालिक साहित्य हो गया। नाटक के बारे में भरत मुनि का मत है कि 'नाटकः पञ्चमो वेदः' और 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। इन दोनों सिद्धान्तों को प्रसाद जी ने ध्यान में रखते हुए अपने साहित्य का सर्जन नाटक के माध्यम से किया। इसी से उपन्यासों की सामाजिकता इनके ऐतिहासिक नाटकों में नहीं आने पाई।

हिन्दी साहित्य में विशेष उपन्यासांग यानी ऐतिहासिक उपन्यास पूर्णरूपेण उपेक्षित रहा, यह बात प्रसाद जी के ध्यान में बहुत कालोपरान्त आयी। इसी के परिणामस्वरूप प्रसाद जी इस विशेष साहित्यांग की ओर झुके और इसी का परिणाम 'इरावती' नामक उपन्यास है। यह कृति अगर किसी प्रकार भी पूर्ण हो गई होती तो हिन्दी के नूतन पीढ़ी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों को एक नवीन वस्तु के रूप में साहित्य सेवा के लिए विशाल क्षेत्र प्राप्त हो जाता। समय को इसकी पूर्णता मंजूर नहीं थी। इस उपन्यास को प्रसाद जी ने अपने साहित्यिक सेवा एवं जीवन के अन्तिम क्षणों में लिखने का प्रयास किया था।

और इस प्रयास में कामायनी के रहस्यवाद, रूपक तत्वों तथा मानव की भावनाओं को ले करके कंकाल और तितली की सामाजिक अवस्था को चित्रित करते हुए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर इन्होंने 'इरावती' नामक उपन्यास का सर्जन किया।

इस उपन्यास में शुंग काल से संबंधित कथानक की अवतारणा की गई है। इसमें देश काल, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धार्मिक स्थिति एवं सांस्कृतिक समस्याओं का दिग्दर्शन समुचित रूप से पात्रानुकूल किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों के भीतर प्रचलित रोमांसवादी परंपरा इनके 'इरावती' में कहीं भी परिलक्षित नहीं होती। प्रस्तुत उपन्यास के भीतर रानी इरावती का चरित्र इस प्रकार से चित्रित किया गया है कि वह पाठकों को प्रभावित किए विना नहीं रह सकता। इसके भीतर रानी की नारीसुलभ भावनाओं का चित्रण एवं उसकी कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता तथा प्रजा के प्रति पुत्र-वत्सलता की साधारण मानवीय भावनाओं का बहुत ही उत्कृष्ट कोटि का चित्रण प्रसाद जी ने किया है।

ऐतिहासिक उपन्यास की कसौटी पर कसने पर यह उपन्यास भले ही अपने अपूर्णत्व के कारण संक्षिप्त हो परन्तु कला दृष्टि से अब तक के उपलब्ध हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का अग्रणी ही दिखाई पड़ता है। 'इरावती' उपन्यास की कसौटी पर बिलकुल ही खरा उतरता हुआ सर्वोत्कृष्ट है। यह उपन्यास जिस अवस्था में है, अब वह उसी अवस्था में रहेगा क्योंकि इसके लब्धप्रतिष्ठ लेखक इस असार संसार से सदा के लिए उठ गए हैं। इसको पूर्ण करने का साहस भी कोई अन्य लेखक नहीं कर सकता क्योंकि प्रसाद जी के ऐतिहासिक ज्ञान के साथ समानता करने का साहस कम से कम आधुनिक ऐतिहासिक

उपन्यासकार के लिये कठिन है। इसलिए इसके पूर्ण होने के कोई भी लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

चन्द्रलेखा वियोगिनी :—

यह उपन्यास अभी तक पुस्तक रूप में हिन्दी साहित्य में नहीं आया है। इसके रचयिता हिन्दी साहित्य के ख्यातिप्राप्त विद्वान् डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं। इन्होंने इस उपन्यास को 'बाणभट्ट की आत्मकथा' लिखने के उपरान्त लिखना प्रारम्भ किया था और इसका सर्वप्रथम रूप धारावाहिक ढङ्ग से पत्रिका में आया लेकिन वह धारा प्रवाहमध्य में ही विश्रृङ्खल हो गयी। इसका एक मात्र कारण आचार्यजी की अधिक कार्य-व्यस्तता ही थी। प्रस्तुत प्रबन्ध लेखबद्ध करते समय आचार्य गुरुवर जी से इस विषय पर प्रश्न किया तो उन्होंने मुझे यह बताया कि इस अपूर्ण उपन्यास को बहुत ही शीघ्र पूर्ण करके हिन्दी के उपन्यास क्षेत्र में कलाप्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत करूँगा।

इस उपन्यास के पूर्ण हो जाने पर यह हिन्दी साहित्य की उस कमी को पूरा करेगा जिसके कारण हिन्दी का वर्तमान उपन्यास साहित्य विश्व के अन्य उपन्यास-साहित्यों के सम्मुख खड़े होने में कुछ झिझकता हुआ सा प्रतीत होता है।

यह उपन्यास इस प्रकार के मनोहर वातावरण और कथानक के साथ तारतम्य को स्थापित करते हुए अग्रसर होता हुआ प्रतीत होता है जिसके कारण अध्ययनकाल में पाठक इतना प्रभावित मालूम पड़ता है कि वह स्वयं उपन्यास में वर्णित पात्रों में से एक पात्र हो गया है और उसी में वह वास्तविक रूप से 'सहितस्य भावः' का सम्बन्ध जोड़ने लगता है। कला और ऐतिहासिकता की दृष्टि से इसका बहुत कुछ अंश कल्पनाश्रित है और इसमें सत्यांश की मात्रा अधिक है तथा यह इतिहाससमर्थित भी

है। कालगति, देशकाल का चित्रण तथा काव्यगत दोष इसमें नहीं के बराबर हैं। यह उपन्यास जब पूर्ण होगा और हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में प्रस्तुत किया जायगा तो यह अपना अनोखा ही स्थान बनाते हुए भविष्य के ऐतिहासिक उपन्यासकारों का मार्गदर्शक बनेगा।

(ख) हिन्दी में अनूदित उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यासः—

वैसे तो हिन्दी साहित्य में उपन्यास गद्य-साहित्य के द्वितीय उत्थान काल में ही दिखाई पड़ते हैं। हिन्दी में उपन्यास सर्वप्रथम अनुवाद के रूप में आए और इन्हीं अनुवादों से थोड़ा बहुत प्रभावित होकर हिन्दी में मौलिक उपन्यास लिखे जाने लगे। इतना होने पर भी हिन्दी में ऐसे उच्चकोटि के उपन्यास नहीं उपलब्ध हो सके जिन्हें कि विश्व उपन्यास साहित्य के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सके अतः अन्ततोगत्वा फिर अनुवादों की शरण में हिन्दी उपन्यासकारों को जाना पड़ा। इसके फलस्वरूप अन्य भाषा के साहित्यों से उनकी उत्कृष्ट और श्रेष्ठतम रचनाओं को अनुवाद के रूप में हिन्दी में लाया गया। भारतीय और पाश्चात्य परम्परा की विवेचना करते हुए दूसरे अध्याय में जो कुछ भी उपलब्ध ऐतिहासिक उपन्यास अनुवादों के रूप में थे वह दिग्दर्शित करा दिए गए। लेकिन वे उपन्यास उत्कृष्ट कोटि के नहीं थे जो कि बाद में अनुवाद के रूप में हिन्दी में आए। निष्पक्ष रूप से अगर अभी भी देखा जाय तो हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास उस श्रेणी के नहीं उपलब्ध हैं जैसे कि अन्य साहित्यों में प्राप्त हैं। उत्कृष्ट अनुवादों के रूप में अन्य साहित्यों से लिए गए ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रमुख उपन्यास इस प्रकार हैं:—

शशांक	...	बँगला	...	श्री राखाल दास वन्द्योपाध्याय
करुणा	...	बँगला	...	श्री राखाल दास वन्द्योपाध्याय

उषाकाल	...	मराठी	...	श्री हरी नारायण आप्टे
गढ़आला परमसिंहगेला		मराठी	...	श्री हरी नारायण आप्टे
गुजरात नो नाथ		गुजराती	...	श्री कन्हैया लाल मुंशी
राजाधिराज	...	गुजराती	...	श्री कन्हैया लाल मुंशी
ला मिजरेबल (अभागे का भाग्य)		फ्रेञ्च	...	विक्टर ह्यूगो
मोतियों का खजाना		फ्रेञ्च	...	ड्यूमा
तीन तिरंगे	...	फ्रेञ्च	...	ड्यूमा

इन उपन्यासों के अनुवाद रूप में हिन्दी में आने के कारण हिन्दी के उपन्यासकारों को मौलिक उपन्यास लिखने में अत्यन्त सहायता प्राप्त हुई एवं ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की भावना भी हृदय के भीतर जागरित हुई जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी गद्य साहित्य के तृतीयोत्थान काल में जितने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए वे सब प्रायः उसी साँचे में ढले हुए मालूम पड़ते हैं जिनका कि अनुवाद रूप हिन्दी में आया था। इन उपन्यासों की शैली और कथानक की निरन्तर प्रगति करने की पद्धति तथा फल की प्राप्ति के लिए नायक के प्रयत्न एवं समाज की मान्यताओं का ठीक रूप से मूल्यांकन करते हुए जो कुछ भी हिन्दी के मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासों में दिखलाया गया है वह सब उपर्युक्त उल्लिखित ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवाद का ही फल है। इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दी के मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास-कारों में कोई भी प्रतिभा-सम्पन्न नहीं था। जो कुछ भी उपन्यास ख्याति को प्राप्त हुए हैं और सार्वजनिक साहित्य का रूप धारण कर चुके हैं उन्होंने भले ही अपने कथानक और शैली का अनुकरण अन्य साहित्यांगों से किया हो लेकिन रोचकतापूर्वक कथानक को मन को प्रभावित करने वाले वातावरण में रखकर उपन्यासों का सर्जन करके

सार्वदेशिक और सार्वकालिक साहित्य के रूप में प्रस्तुत कर सकना केवल उपन्यासकार की मौलिक प्रतिभा ही है न कि अनुकरण मात्र। इसी से हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास राष्ट्रप्रेम और जनता के मनोभावों को जाग्रत करने तथा उनको अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ अनुवादों की एक परम्परा ही चल निकली है जिसके कारण हिन्दी में अभी भी अनुवादों की कमी नहीं है।

(ग) नवीन उपलब्धियाँ:—

हिन्दी उपन्यास साहित्य ने पिछले पाँच वर्षों में बड़ा ही क्रान्तिकारी परिवर्तन अपने में किया है, जिसके परिणामस्वरूप उपन्यासकारों की बड़ी संख्या ने शहर को त्याग कर ग्राम्य जीवन को अपनी कथा का आधार बनाया है। इसका एक मात्र कारण शहरी जीवन के ऊपर आधारित कथानक को पढ़ते-पढ़ते पाठकों को 'अपच' हो जाना ही है। यही कारण है कि बहुत से प्रतिभाशाली कथाकारों ने पथभ्रष्ट होकर अपने उपन्यासों के ऊपर भड़कीला लेबुल लगाकर उन्हें साहित्य-जगत् में प्रस्तुत किया है; किन्तु उन्हें कोई भी तब तक उपन्यास नहीं मान सकता जब तक कि उपन्यास की परिभाषा ही न बदली जाय।

पाठकों का बहुत बड़ा समुदाय अतीत की ओर उन्मुख हुआ है जिसके कारण अब तक हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की जो संख्या अंगुलियों पर गिनी जाती थी वही इस रुचि-परिवर्तन के कारण अत्यधिक हो गई है। ऐतिहासिक उपन्यासों के सर्वप्रिय प्रणेता श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने दो नूतन उपन्यास प्रस्तुत किए हैं—'माधव जी सिन्धिया' और 'भुवन विक्रम'। वर्मा जी को ऐतिहासिक उपन्यासकारों में जो सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है उसका कारण माधव जी सिन्धिया ही है। वर्मा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य और अकर्म-

ण्यता में आकंठ मग्न मराठों का ऐसा सजीव चित्रण किया है कि अठारहवीं शती के अन्तिम दशकों के भारत का चित्र पाठक के सामने साकार हो जाता है। वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी पृष्ठभूमि की सहजता। 'माधव जी सिन्धिया' में उनकी उपन्यास कला ने निस्सन्देह चमत्कृत कर देने वाला मोड़ लिया है। इसके प्रायः सभी पात्र ऐतिहासिक हैं लेकिन माधव जी और गन्ना बेगम के विवाह का अंश उपन्यास को त्वरित गति प्रदान करने मात्र के लिए है। संभवतः गन्ना बेगम ऐतिहासिक पात्र नहीं है परन्तु उपन्यासकार की कल्पना ऐतिहासिकता से सराबोर है। यही ऐतिहासिक उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता है। वर्मा जी का दूसरा उपन्यास 'भुवन विक्रम' प्राचीन भारतीय इतिहास पर आधारित है। इस उपन्यास के अध्ययन से यह निष्कर्ष बड़ी आसानी से निकाला जा सकता है कि जितनी सहजता से बुन्देलखंडी और मुगल जीवन के आधार पर वर्मा जी लिख पाते हैं उतनी सहजता से प्राचीन भारतीय इतिहास के आधार पर नहीं।

'वैशाली की नगरवधू' के ख्यातिप्राप्त रचयिता श्री चतुरसेन शास्त्री का नूतन ऐतिहासिक उपन्यास 'सोना और खून' (प्रथम खंड) बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह उपन्यास और अन्य खंडों में भी प्रकाशित होने वाला है। इसमें मुगल और मराठा शक्तियों के पतन और अंग्रेजों के अभ्युदय के कारणों पर कथानक आधारित है। प्रथम खंड से भले ही संपूर्ण उपन्यास की संभावनाएँ मालूम हो जायँ लेकिन इसके पूर्ण होने के उपरान्त ही इसके बारे में कोई मत निर्धारित किया जा सकता है। बारहवीं शताब्दी के आधार पर इनका दूसरा उपन्यास 'देवांगना' है। इसमें धार्मिक प्रवृत्तियों के उत्थान और पतन एवं विकृत रूपों को चित्रित करने में ये बहुत ही सफल हुए हैं।

तरुण ऐतिहासिक उपन्यासकारों में श्री आनन्द प्रकाश जैन का स्थान भी महत्वपूर्ण है और उनका 'तीसरा नेत्र' प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका कथानक बनारस के राजा बन्नार को लेकर लिखा गया है। उस काल के बनारस का सांस्कृतिक चित्रण करने में लेखक ने स्वयं को असमर्थ पाया है। इसको लेखक ने अज्ञानतावश स्वीकार कर लिया है। इतना सब होने पर भी यह उपन्यास बहुत ही सफल है। इसमें तत्कालीन काशी की धार्मिक पोंगापंथी का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसमें तिलस्म आदि वस्तुओं को बचा लिया जाता तो यह उपन्यास बहुत ही सफल हो गया होता। इनकी प्रतिभा इतिहास में डूबकर बहुत ही निखर उठी है।

गिरिजा शङ्कर पाण्डे हिन्दी के नवीन पीढ़ी के उपन्यासकार हैं। हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में इनका अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसका एक मात्र कारण यह है कि इन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य के उस विशिष्ट अङ्ग को अपनाया है जिससे कि बहुत से लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार दूर ही रहने का प्रयत्न करते हैं। इन्होंने इतिहाससिद्ध और प्रसिद्ध घटनाओं को अपने उपन्यास में अवतरित किया है और इनका प्रयास बहुत ही सफल हुआ है। इसमें औपन्यासिक प्रतिभा के साथ ही साथ ऐतिहासिक ज्ञान की भी प्रचुरता है। इन्होंने 'चेतसिंह का सपना' (१९५६) अठारह वर्ष बाद (१९५८) नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है। सम्पूर्ण उपन्यास को पढ़ने के उपरान्त कोई भी पाठक इसे केवल ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहेगा, अपितु यह ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्णरूपेण समर्थित और वर्णनात्मक शैली पर लिखित राजनैतिक उपन्यास सा प्रतीत होता है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो यह हिन्दी के उपन्यास साहित्य में एक नवीन प्रयोग है। इसमें एक व्यक्ति की ही कहानी नहीं है अपितु इसमें वारेन हेस्टिंग्स, फ्रांसिस प्रभृति ईस्ट-

इण्डिया कम्पनी के सञ्चालक तथा आसफुद्दौला, शुजाउद्दौला प्रभृति देशी नवाबों की कहानी है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण उत्तर भारत की राजनीतिक कहानी है, जिसके सभी पात्र एक से एक बढ़कर हैं और सब की अलग-अलग विशेषतायें एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। इसमें घिसी-घिसाई प्रेम-कहानी भी नहीं है जो कि अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में पायी जाती है। यह सम्पूर्ण उपन्यास चेतसिंहकालीन काशी के राजनीतिक स्थिति का रङ्गीन चित्र ही नहीं उपस्थित करता अपितु अपने समकालीन आसपास के अन्य नगरों की स्थिति को भी व्यक्त करता है। लेखक ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि यह उपन्यास कोरा-कोरा ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है। वे कहते हैं कि 'चेतसिंह का सपना ऐतिहासिक उपन्यास है, किन्तु इसमें अनेक नवीनतायें भी हैं। मैं इसे ऐतिहासिक न कहकर राजनीतिक उपन्यास मानता हूँ क्योंकि इसमें किसी व्यक्तिविशेष के प्रेम-सम्बन्ध अथवा अन्य बातों की चर्चा मात्र नहीं है वरन् इसमें तत्कालीन काशी की राजनीतिक चेतना की ध्वनि भरी है। जनता, अधिकारियों, अन्य राज्यों, अंग्रेजी कम्पनी के सञ्चालकों की नीति और आचरण की सव्याख्या कहानी वर्णित है। साधारण उपन्यासों में पाई जाने वाली शैली और घटना-प्रवाह से, इसी कारण पाठक इसमें अन्तर पायेंगे।'[1] इन्होंने स्थानीय पात्रों के वार्तालाप को प्रस्तुत करते समय कहीं-कहीं पर साहित्यिक मर्यादा का सीमोल्लंघन कर दिया है।

'चेतसिंह का सपना' के भीतर चेतसिंह का चरित्र उपन्यासकार ने धीरोदात्त नायक के रूप में किया है। प्रस्तुत उपन्यास में काशी का भौगोलिक वर्णन एवं उस काल के ऐतिहासिक प्रसिद्ध बाजारों, घाटों

---

१. 'चेतसिंह का सपना' (प्रथम भाग) भूमिका—पृष्ठ १-२।

और गलियों के भी वर्णन किये गये हैं। इस सम्पूर्ण उपन्यास में कल्पनांश की अधिकता एवं सत्यांश की न्यूनता है। इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिये कि प्रस्तुत उपन्यास के तथाकथित जितने भी पात्र हैं वे सब इतिहास-सिद्ध नहीं हैं अपितु ऐतिहासिक ख्यातिप्राप्त पुरुष वारेन हेस्टिंग्स, शुजाउद्दौला एवं ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के सञ्चालक गण हैं। इस उपन्यास में उस सत्य का रहस्योद्घाटन किया गया है जिसको अन्य भारतीय एवं विदेशी इतिहासज्ञों ने प्रकट करने में हिचक का अनुभव किया और वह है वारेन हेस्टिंग्स की प्रेम-कहानी। इस उपन्यास में सन् १७७० से १७८१ तक के काशी के सांस्कृतिक और वैयक्तिक जीवन का खुलकर वर्णन हुआ है। इसमें उस इतिहास-प्रसिद्ध 'पुराण-पुरी' की भी चर्चा है जिसने उस काल में भारतीय संस्कृति के प्रचारार्थ रूस की पैदल यात्रा की थी (एसियाटिक रिसर्चेज़)। उस काल के सांस्कृतिक व्यक्तियों का भी बहुत ही मार्मिक ढङ्ग से चित्रण किया गया है जैसे बाबा कीनाराम और बापूदेव शास्त्री। प्रस्तुत उपन्यास में जहाँ तक भाषा का प्रयोग है उसमें भोजपुरी और बनारसी बोली का बाहुल्य है। प्रस्तुत उपन्यास में नदियों पर नाव से यात्रा का वर्णन किया गया है जिसकी प्रेरणा उपन्यासकार को बङ्किमचन्द्र के उपन्यासों—'देवी चौधरानी और चन्द्रशेखर'—से प्राप्त हुई है। इस उपन्यास का अन्त भी बहुत ही मार्मिक ढङ्ग से किया गया है। राजा को पकड़ने के लिये शिवाले के किले में घेरा डाला जाता है और ऐसे समय में मौका पाकर उनका अतिविश्वासी दीवान जो कि प्रतिशोध लेने के लिये व्याकुल रहता है वह औसानसिंह राजा को पकड़वाने का असफल प्रयास करता है। उसी समय काशी की राजभक्त जनता तथा राजा की सेना का अभाव होता है और युद्ध तथा हत्याकाण्ड के दृश्य लक्षित होते हैं। राजा रामनगर की रक्षा के लिये प्रस्थान करते हैं और वहाँ पर

अंग्रेजों से युद्ध होता है तथा अंग्रेजों की पराजय होती है। लेकिन इसी बीच राज्य के लोलुप पदाधिकारियों द्वारा षड्यन्त्र रचे जाने के कारण चेतसिंह की पराजय होती है और कम्पनी के प्रभुत्व का उत्तरोत्तर विस्तार होता है। इस प्रकार से देखा जाय तो यह उपन्यास कल्पना-भिभूत, अतिरंजित और साथ ही साथ सत्याश्रित होकर भी बहुत ही सुन्दर रूप से अवतरित किया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।

नवाँ अध्याय

अहिन्दी भाषा साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा

क—कन्नड साहित्य :—

कन्नड साहित्य में सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास लिखने का श्रेय स्व० एम० एस० पुट्टण्णा जी को है, जिन्होंने सर्वप्रथम 'माडिद् उण्णों महराया' नामक उपन्यास १९१५ ई० में लिखा। ऐतिहासिक उपन्यास न होने पर भी इसमें के कई पात्र ऐतिहासिक हैं। इस ग्रंथ में मैसूर के महाराजा कृष्णराज ओडयार तृतीय के कलाप्रेम तथा उस समय के नैतिक वातावरण का चित्र उपस्थित किया गया है। इन्हीं के समकालीन वासुदेवाचार्य जी ने 'मातृ-घातक औरंगजेब' नामक उपन्यास प्रस्तुत किया जिसने कि नवीन पीढ़ी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों के मार्ग को प्रशस्त किया। इस ग्रन्थ में भी कल्पना के अंश का आधिक्य था और इतिहास-समर्थित सत्य की मात्रा न्यून थी। इसी काल के लगभग आनन्दकन्दजी ने दो मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास 'राजयोग' एवं 'अशांतिपर्व' लिखकर ऐतिहासिक उपन्यासों की कमी को पूरा करने का प्रयास किया। इन दोनों उपन्यासों की कथावस्तु विजयनगर राज्य के इतिहास को लेकर लिखी गई है। इसके विरूपाक्षराय, राजशेखर, मल्लि-

कार्जुन आदि इतिहाससिद्ध ऐतिहासिक चरित्र हैं और अन्य जो भी पात्र उपलब्ध हैं वे कल्पनाजन्य हैं। इसकी कथावस्तु वीर रस से पूरित होने पर भी प्रणय लीला से सम्बद्ध है। इसकी नायिका हेमाम्बिका के चरित्र का चित्रण पूर्णरूपेण कर सकने में लेखक ने अपने को अशक्त पाया। टीपू सुल्तान के समय के मैसूर के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण को लेकर श्री सीताराम शास्त्री ने 'दौलत', 'नगरद राणी' आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इसमें टीपू सुल्तान के वैभव और अतुलनीय साहस एवं देशप्रेम को बहुत ही ज्वलन्त रूप में चित्रित किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में वीर एवं शृंगार का अनुपम मेल दिखाया गया है। उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इसमें ऐतिहासिक सत्य की अपेक्षा कल्पना की उड़ान अधिक है।

ऐतिहासिक उपन्यासकारों के भीतर अपना विशिष्ट स्थान बनाते हुए श्री 'देवड्डु' आते हैं और इनका 'मयूर', 'अवल्कथें' उल्लेखनीय है। इसकी कथावस्तु कदम्बवंश के संस्थापक मयूर शर्मा से संबंधित है। इनके उपन्यासों में ऐतिहासिक पात्र केवल नाम गिनाने मात्र को हैं। लेकिन कल्पित घटनाओं की प्रचुरता है। यह तो सर्वविदित सत्य है कि कोई भी रचनाकृति केवल ऐतिहासिक पात्रों के नाम गिनाने मात्र से ही ऐतिहासिक नहीं बन जाती अपितु उसके प्रत्येक अंश को ऐतिहासिक आधारों से समर्थित कराना पड़ता है। इस कार्य को करने में श्री देवड्डु असफल हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकारों की श्रेणी में अपना मूर्धन्य स्थान बनाते हुये श्री मास्ती वेंकटेश अय्यंगार आते हैं और उनकी उत्तम ऐतिहासिक कृति 'चेन्नबसवनायक' है, जिसमें कि हैदर के राज्यकाल के अन्तर्गत बिदनूर नामक एक छोटी सी रियासत की कहानी है। संपूर्ण ग्रंथ में ऐतिहासिक धरातल

पर चित्रित मानवीय संस्कृति का अत्यन्त ही भव्य महल खड़ा किया गया है। चित्रदुर्ग के छोटे-छोटे स्वतन्त्र राजाओं को लेकर श्री सुब्बराव ने 'रक्तरात्रि', 'तिरूब बाण' आदि उपन्यास लिखे। इन्होंने राष्ट्रकूट नरेश नृपतुंग की जीवनी पर एक सुन्दर उपन्यास 'राष्ट्रकूटर नृपतुंग' लिखा है। इनकी रचनाओं में कल्पना और तथ्य अन्योन्याश्रित हैं। श्रृंगार एवं वीर रस को तद्रूप अपनी रचनाकृति में प्रतिफलित करने में सुब्बराव जी अद्वितीय हैं।

स्वातन्त्र्य संग्राम से प्रभावित होकर रचना करने वालों में श्री मूर्ति जी तथा के० बी० अय्यर हैं। श्री अय्यर ने 'शांतला', 'रूपदर्शी' ये दो ही उपन्यास लिखे हैं लेकिन शांतला ने उनको अमर बना दिया है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस उपन्यास का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद है। इस उपन्यास की कथावस्तु 'ह्रयसल नरेश' विष्णुवर्धन से संबधित है जिसमें कर्नाटक की मध्ययुगीन कला एवं संस्कृति का जीता-जागता चित्र है। इस ग्रन्थ में विशिष्ट बात ध्यान देने योग्य यह है कि इसमें इतिहास, कल्पना एवं कला तीनों का त्रिवेणी संगम प्रस्तुत किया गया है।

आजकल आधुनिक कन्नड़ साहित्य के भीतर उपन्यासों का युग चल रहा है और उपन्यास भी अनगिनत संख्या में धड़ाधड़ लिखे और प्रकाशित किए जा रहे हैं। पचास उपन्यास लिखने का श्रेय तो श्रीकृष्ण राव को प्राप्त है। इतना सब होने पर भी अभी कन्नड़ साहित्य में उच्च कोटि के ऐतिहासिक उपन्यास उपलब्ध नहीं हैं। इससे ऐसा आभास होता है कि ऐतिहासिक उपन्यास सुलभ होने योग्य नहीं हैं।

(ख) तामिल साहित्य :—

आजकल तमिलनाड़ में ऐतिहासिक साहित्य-कृतियों का सर्जन

हो रहा है। इसमें भी सर्वप्रथम दो विपरीत धारायें प्रत्यक्ष रूप में सामने आईं—(१) ऐसी कृतियाँ जिनमें किसी राजा का जीवनचरित्र ही प्रधान हो। जैसे–पृथ्वीराज का चरित्र (नमः शिवाय मुदलियार्)। (२) ऐसी कृतियाँ जिनमें कि ऐतिहासिक पात्र एवं कथावस्तु तक भी कल्पना करके उद्धृत की जाय। जैसे सूर्यनारायण शास्त्री द्वारा लिखित 'मतिवाणन्'।

तदुपरांत उपन्यासकारों ने शैली में परिवर्त्तन अभीष्ट समझा और उसकी तृप्ति के लिए अनुवादों की शरण ली, जिसके परिणामस्वरूप आ० सी० दत्त का उपन्यास 'महाराष्ट्र जीवन उदय' अनूदित हुआ। ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में उल्लेखनीय और प्रशंसनीय कार्य श्री कल्किजी ने किया। इनके–'पार्थिवन् कनक' तथा 'पुत्तीयन सेल्वन' उपन्यास बहुत ही लोकप्रिय हैं। उपर्युक्त उपन्यासों की कथावस्तु शूल तथा पल्लव के राजाओं से संबंधित है। इसके उपरांत तामिल साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाते हुए भाष्यम् अय्यंगार आते हैं, जिन्होंने 'उदयभानु', 'मलयवाशल' आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जो कि राजपूत तथा हूणों से संबंधित थे। आजकल के नवीन पीढ़ी के उपन्यासकारों ने तामिलनाड़ इतिहास को ही आधार बनाकर उपन्यास लिखना शुरू किया है। डाक्टर पार्थ सारथी 'पांडिमा देवी' नामक लम्बा उपन्यास धारावाहिक उपन्यास कल्कि में छाप रहे हैं। इसमें वे पांड्य देश के प्राचीन वैभव को दिखाना चाहते हैं लेकिन अध्ययन के अभाव के कारण ऐतिहासिक तथ्यों को समाविष्ट करने में अशक्त हैं। अभी तक तामिल साहित्य के भीतर ऐसी कोई औपन्यासिक कृति नहीं आयी है जो कि अन्य भाषा साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासों के समक्ष अपना भी विशिष्ट स्थान बना सके, जिसके लिए तामिल साहित्य के नवोदित उपन्यासकार सतत प्रयत्नशील हैं।

(ग) आसामी साहित्य :—

अनेक शोधोपरान्त यह तथ्य प्रत्यक्ष रूप से आसामी साहित्य में दृष्टिगोचर होता है कि इस साहित्य का सर्वप्रथम उपन्यास 'कामिनीकान्त' है। यह एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें धर्मभावना को लेकर कथानक अग्रसर होता है। आसामी साहित्य का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'मनोमती' उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक स्व० रजनीकान्त बरदोली थे। इस काल में रचित उपन्यासों की आधारभूमि १८ वीं और १९ वीं शती की राजनैतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक परिस्थिति थी। 'मनोमती' उपन्यास के भीतर वैष्णववाद तथा उस काल के राजनैतिक विप्लव का हृदयग्राही वर्णन है। यह उपन्यास रजनीकान्त जी का प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है। वैसे इन्होंने अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। इनमें प्रमुख 'ताम्रेश्वरी मन्दिर', 'राधा रुक्मिणी रण' 'दन्दुवा द्रोह' हैं। ये सब उपन्यास आसाम के इतिहास से समर्थित हैं और इनमें आसाम के सांस्कृतिक जागरण और सामाजिक परम्परा का चित्रण सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। मानव-समाज के नैतिक स्तर को उच्च आदर्शों पर प्रतिष्ठित करने का लेखक ने अथक परिश्रम इन उपन्यासों के माध्यम से किया है। लेखक के स्वयं वैष्णवमतावलम्बी होने के कारण उपन्यास में जहाँ कहीं भी वैष्णव मत से संबंधित धारणायें आयी हैं वहाँ वैष्णव मत को ऊँचा दिखाने की सतत प्रयत्न किया गया है।

औपन्यासिक कला की दृष्टि से अगर इन उपन्यासों की विवेचना की जाय तो ये उपन्यास पूर्णरूपेण खरे नहीं उतरते। ये सब उपन्यास व्यक्तिप्रधान उपन्यास हो गए हैं न कि समाजप्रधान। रजनीकान्त जी के ऊपर स्काट तथा बंकिम बाबू का प्रभाव स्पष्ट रूप से उनकी कृतियों

द्वारा भासित होता है। आसाम के उपन्यास साहित्य में और खासकर ऐतिहासिक क्षेत्र में रजनीकांत जी ने बहुत ही ठोस कदम उठाया।

रजनीकान्त जी के काल में आसामी साहित्य में अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार हुए हैं, जिनमें प्रमुख लक्ष्मीलाल बेजबरुवा और पद्मनाथ गोसाईं बरुवा हैं। ये उपन्यासकार मात्र न होकर साहित्य के अन्य अंगों के भी ज्ञाता हैं। बेजबरुवा का ऐतिहासिक उपन्यास 'पदुम कुँवारी' दुखान्त ऐतिहासिक प्रेमकथा को लेकर लिखा गया है। बरुवा जी ने भी दो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। दोनों उपन्यासों की कथावस्तु प्रेम-व्यापार ही है और कथानक आहोम दरबार के सामन्तों के घर से संबंधित है। ये उपन्यास 'लाही' और 'भानुमती' हैं। ये उपन्यास इतिहास-समर्थित सत्य को लेकर चले हैं। लेकिन कथा-प्रवाह में ऐतिहासिक सत्य की उतनी प्रधानता नहीं रह गई है। दण्डीनाथ कालिता ने भी 'गणविप्लव' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है। इसकी पृष्ठभूमि 'मोवामारिया' नामक धार्मिक विद्रोह है। इसमें लेखक ने धार्मिक विद्रोह का बहुत ही सफल चित्रण किया है जो कि इतिहाससिद्ध है।

आसामी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गए हैं। इतिहास के आधार पर नाटकों की रचना अधिक हुई है। आसामी साहित्य में सामाजिक उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। इसका एकमात्र कारण शायद औद्योगिक जीवन-पद्धति ही है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की अत्यधिक सामग्री आसामी साहित्य में होने पर भी लेखकों की प्रवृत्ति उस ओर नहीं गई है। इसलिए ऐतिहासिक उपन्यास के भविष्य के बारे कुछ नहीं कहा जा सकता।

हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास

	उपन्यास	लेखक
१	परीक्षा गुरु	लाला श्रीनिवास दास
२	नूतन ब्रह्मचारी	बालकृष्ण भट्ट
३	लवंगलता	किशोरीलाल गोस्वामी
४	हृदय-हारिणी	"
५	प्रणयी-प्रणय	"
६	कुसुमकुमारी	"
७	राजकुमारी	"
८	कनककुसुम	"
९	लखनऊ की कब्र	"
१०	सोना और सुगन्ध	"
११	लाल कुँअर	"
१२	पन्ना	"
१३	रजिया	"
१४	इरावती (अपूर्ण)	जयशंकर प्रसाद
१५	आलमगीर	चतुरसेन शास्त्री
१६	वयम् रक्षामः	"
१७	वैशाली की नगरवधू (भाग १)	"
१८	" " (भाग २)	"

१९ सोमनाथ	चतुरसेन शास्त्री
२० सिंहगढ़ विजय	"
२१ नूरजहाँ	गंगाप्रसाद गुप्त
२२ कुँवरसिंह सेनापति	"
२३ पूना में हलचल	"
२४ हम्मीर	"
२५ काश्मीर पतन	जयरामदास गुप्त
२६ मायारानी	"
२७ प्रभातकुमारी	"
२८ नवाबी परिस्तान	"
२९ फूलकुमारी	"
३० चन्द्रगुप्त मौर्य	मिश्रबन्धु
३१ पुष्यमित्र शुंग	"
३२ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य	"
३३ स्वतंत्र भारत	"
३४ गढ़कुण्डार	वृन्दावनलाल वर्मा
३५ विराटा की पद्मिनी	"
३६ मुसाहिब जू	"
३७ झाँसी की रानी	"
३८ कचनार	"
३९ माधव जी सिंधिया	"
४० मृगनयनी	"
४१ सोना	"
४२ अहल्याबाई	"
४३ भुवनविक्रम	"

	उपन्यास	लेखक
४४	जय यौधेय	राहुल सांकृत्यायन
४५	सिंह सेनापति	”
४६	मधुर मिलन	”
४७	मुर्दों का टीला	डा० रांगेय राघव
४८	अँधेरे में जुगनू	”
४९	रजिया	धर्मेन्द्र नाथ
५०	तैमूर	”
५१	बाणभट्ट की आत्मकथा	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
५२	श्रेणिक बिम्बसार	चन्द्रशेखर शास्त्री
५३	महामंत्री चाणक्य	रणवीरजी वीर
५४	सूरज का सातवाँ घोड़ा	धर्मवीर भारती
५५	आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य	डा० सत्यकेतु विद्यालंकार
५६	प्रियदर्शी अशोक	हरिभाऊ उपाध्याय
५७	अमिताभ	गोविन्दवल्लभ पन्त
५८	पर्णा	”
५९	नूरजहाँ	”
६०	एकसूत्र	”
६१	दिव्या	यशपाल
६२	अमिता	”
६३	बेकसी का मज़ार	प्रतापनारायण श्रीवास्तव
६४	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा
६५	निरुपमा	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
६६	अलका	”
६७	अठारह सौ सत्तावन	गोविन्द सिंह

६८ गदर	ऋषभचरण जैन
६९ पानीपत	बलदेवप्रसाद मिश्र
७० पृथ्वीराज चौहान	”
७१ उदयन	शुकदेवबिहारी मिश्र
७२ राजपूतों की बहादुरी	हरिदास माणिक
७३ पुनरुद्धार	कंचनलता सब्बरवाल
७४ प्रबल परीक्षा	कु० वीरेन्द्रसिंह रघुवंशी
७५ राजा भोज	श्री संतराम
७६ अजेयतारा	हरिनारायण आप्टे
७७ अठारह वर्ष बाद	गिरिजाशंकर पांडेय
७८ चेतसिंह का सपना	”
७९ जयकच्छ	गुणवंत आचार्य

सहायक ग्रन्थ

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास —स्वर्गीय रामचन्द्र शुक्ल

२. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष —शिवदान सिंह चौहान

३. हिन्दी उपन्यास —शिव नारायण लाल

४. हिन्दी के उपन्यासकार —यज्ञदत्त शर्मा

५. विचार और वितर्क —डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

६. हिन्दी कहानियाँ-भूमिका —डा० श्रीकृष्ण लाल

७. वैशाली की नगरवधू-भूमिका —चतुरसेन शास्त्री

८. रवीन्द्र साहित्य-भाग-२४ —अनु० हंसकुमार तिवारी

९. बंगला साहित्येर उपन्यासेर धारा —डा० सुकुमार सेन

१०. उपन्यास में वर्ग भावना —प्रताप नारायण टण्डन

११. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद —त्रिभुवन सिंह

१२. विश्व साहित्य की रूपरेखा —भगवत शरण उपाध्याय

१३. समीक्षा शास्त्र —डा० दशरथ ओझा

१४. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास —डा० श्रीकृष्ण लाल

१५. नए साहित्य और नए प्रश्न —डा० नन्द दुलारे वाजपेयी

१६. रस मीमांसा —रामचन्द्र शुक्ल

१७. समीक्षा शास्त्र —पं० सीताराम चतुर्वेदी

१८. आधुनिक हिन्दी साहित्य —डा० भोलानाथ

१९. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास —डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
२०. वाङ्मय विमर्श —पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२१. योरोपीय उपन्यास साहित्य —विनोद शंकर व्यास
२२. रघुवंश —कालिदास (चौखम्बा प्रकाशन)
२३. मुर्दों का टीला–भूमिका —डा० रांगेय राघव
२४. आलोचना–१९५२ उपन्यास अंक
२५. आज का भारतीय साहित्य —राजकमल प्रकाशन
२६. काव्य प्रकाश —चौखम्बा प्रकाशन
२७. साहित्य दर्पण —चौखम्बा प्रकाशन
२८. कवि रहस्य —डा० गंगा नाथ झा
२९. साहित्य का साथी —डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
३०. साहित्यालोचन —डा० श्याम सुन्दर दास
31. Theory of Drama —Aladyee Nicoll.
32. History of Bengali Literature —D. C. Sen.
33. The Waverly Illustrated History of English Literature —Thomas Secomba & W. Rebortesn Nicoll.
34. The Novel and the people. Rol-Phox, 1937.
35. Development of English Novel —Cross, 1899.
36. An Introduction to the Study of Literature —W. H. Hudson.
37. History of English

Literature. (12th Impression) —Legousis & Cazamions.
38. Illusion & Reality —C. Caudwell.
39. The Science of fairy tales —E. S. Hartland.

पत्र और पत्रिकाएँ :—

सरस्वती, सुधा, साहित्य सन्देश, ज्ञानोदय; नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका, आलोचना, शोध-पत्रिका—भारतीय इतिहास संशोधक मण्डल, पूना।